भूमिका

ठाकुर जगमोहन सिंह हिंदी के प्रसिद्ध प्रेमी कवियों—रसखान आलम, घनानंद, बोधा, ठाकुर और भारतेन्दु हरिश्चंद्र—की परम्परा के अंतिम कवि थे जिन्होंने प्रेममय जीवन व्यतीत किया और जिनके साहित्य में प्रेम की उत्कृष्ट और स्वाभाविक व्यंजना हुई है। प्रेम को इन्होंने जीवन-दर्शन के रूप में स्वीकार किया था। 'श्यामालता' (सं०-१९४२) के समर्पण में उन्होंने अपने प्रेमी जीवन की एक झाँकी प्रस्तुत की है। उस समर्पण का आरम्भ देखिए :

मैंने तुम्हारे अनेक नाम धरे हैं क्योंकि तुम मेरे इष्ट हो न—और तुम्हारे तो अनेक नाम शास्त्र वेद पुरान काव्य स्वयं गा रहे हैं तो फिर मेरे अकेले नाम धरने से क्या होता है। तुम्हारे सबसे अच्छे नाम श्यामा, दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी, वैष्णवी, त्रिपुरसुंदरी, श्यामसुंदरी, मनमोहिनी, त्रिभुवन मोहिनी, त्रैलोक्य विजयिनी, सुभद्रा, ब्रह्माणी, अनादिनी, देवी, जगन्मोहिनी इत्यादि,—इनमें से मैं तुम्हें कोई एक नाम से पुकार सकता हूँ। पर उपासना भेद से तथा इस काव्य को देख मैं इस समय केवल श्यामा ही कहूँगा। यदि मैं कदाचित् तुम्हें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, बलदेव, नंदगोपाल, माधव, ब्रजचंद्र वा प्राणेश प्रभृति नाम से गाऊँ तो भी सब ठीक है। क्योंकि "अनेक रूप रूपाय" यह गीत तुम्हारा पहिले ही से गाया है। और 'मोमें तोमें खड्ग खम्भ में' यह भी सभी जानते हैं। सम्हारना—गुस्सा मत होना। हमको सिवाय तेरे और किसी का बल नहीं है तू मेरी इष्ट देवता है।

और उसी समर्पण का अंत इस प्रकार किया गया है :

· मुझे तो कुछ चेत नही कि क्या करता हूँ वा क्या कहता हूँ। अधमोद्धारिनि ! इस अधम का उद्धार करो इस अधम का कर गहो। और अपने शरण में राखो। यह मेरे प्रेम का उद्गार है। तूने मुझे कहने की शक्ति दी। मेरी लेखनी को शक्ति दी तभी तो इतना बक भी गया। यह मेरा सच्चा प्रेम है कुछ ऊपर का नहीं जो लोग हँसें। हँसेंगे वही जो मूर्ख हैं भरम में वही पड़ेंगे जिनके पापी हृदय हैं मैं तो सदा का पापी हूँ अपने को नहीं कहता तेरे शरणागत हूँ "पाहिमाम्"—अपनी दया की कोर से मुझे अपनी ओर करो। सुख मत मोरो इसमें तुम्हारी हँसी होगी अपनाय के अब दूसरों के मत बनाओ—यहाँ तेरे नाम की माला सदा जपते हैं जपना क्या तेरा नाम मेरी हर एक हड्डी में मुद्रित हो गया है। चाहै तो देख लेव—कहूँ कहाँ तक "गिरा अनयन नयन बिनु बानी" और जहाँ तक तुम्हें जाँच करनी हो कर लो मेरी भक्ति इतने ही से जान लेना :

"लोचन मगु रामहिं उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।"
""तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन सदा बसत तुहि पाहीं। जानु प्रीति रस इतनेहिं माहीं॥"

तथाच

नाम पाहरू रात दिन ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद यन्त्रित जाहि प्राण केहि बाट॥

इत्यादि से समझ लेना—दया राखो और इसे ग्रहण करो क्योंकि यह सब तुम्हीं को समर्पित है।

इसी प्रकार 'देवयानी' के समर्पण में भी श्यामा को सम्बोधन कर कवि ने स्वीकार किया है :

इस देवयानी और ययाति के (की) सरल प्रीति के विवरन की सार तुम्हीं हो—किसी न किसी मिस से तुम्हारा जप, तप और ध्यान करी लेता हूँ—इसमें भी हमारा तुम्हारा प्रेम गाया गया है—पर प्रकट रूप में नहीं क्योंकि इसके सुनने के पात्र तो कोई भी नहीं है मैं तो तेरा हो चुका—उसी दिन—जिस दिन तुमने मुझे कृतार्थ किया था—

'श्यामा सरोजनी' भी उसी श्यामा को समर्पित किया गया है। अस्तु, 'श्यामास्वप्न', 'श्यामालता', 'देवयानी' और 'श्यामा सरोजनी' सभी में कवि ने अपने प्रेम और प्रेमी जीवन की अभिव्यक्ति की है। इतना ही नहीं इनके अनुवादित ग्रंथों में भी प्रेम की ही चर्चा है। इस प्रेम स्वरूप कवि की प्रेमाभिव्यक्तियाँ वास्तव में अनूठी हैं।

भारतेन्दु युग के इस प्रेमी कवि ने अपनी रचनाओं में जहाँ तहाँ अपना परिचय भी दे दिया है। पुस्तकों के मुखपृष्ठ पर ही वे अपना पर्याप्त परिचय हिन्दी और अंगरेजी दोनों में दे दिया करते थे। 'देवयानी' के मुखपृष्ठ पर ऊपर देवनागरी में शीर्षक और अपना संक्षिप्त परिचय देकर नीचे उन्होंने अंगरेजी में लिखा है :

Devayani—Story of Devayani and Yayati—Translated from the original Sanskrita of the Mahabharata into Hindi verse by Thakur Jagmohan Sinha, Member of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland—son of the late Chief of Bijayraghogarh C. P., Author of the Hindi version of the Meghduta, Ritu-Samhar, Kumarsambhava, Life of Ramlochan Prasad, Pramitakshar Dipika, Prem-Ratnakar,

Prem Sampattilata, Shyamalata, Shyama vinaya, Sajjanastak and many other miscellaneous works.

और अपने अन्य ग्रंथों में भी जहाँ तहाँ अपना परिचय लिख दिया है। इनका जीवन एक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति की करुण कहानी है। ये विजयराघव गढ़ के राजकुमार थे। इनके जन्म से पूर्व विजयराघव गढ़ की समृद्धि कैसी थी इसका वर्णन स्वयं इनकी रचना में देखिये। 'ऋतुसंहार' की भूमिका में उस राज्य के प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन के पश्चात् कवि लिखता है :

तिन श्री राघव बाहुबल निरभय सब नर लोग।
बसत विजयराघव गढ़हिं सदा सुखी गत सोग।
सदा सुखी गत सोग रोग बिनु भोग विभूपित।
बर्नाश्रम में निष्ट इष्ट रत सिष्ट अदूषित।
जगमोहन सब भौंन भरे हीरा मनि मोतिन।
लखियत सब पुर सुखी जगत जगमग जन जोतिन।

परंतु इनके समय में वही विजयराघव गढ़ खंडहर बन गया था। स्वयं कवि की वाणी सुनिये :

जहाँ विजयराघवपुरी रही फूल सी फूल।
चहुँ दिसि खँडहर लखत अब लखत होत हिय सूल।
लखत होय हिय सूल भूमि मिलि गईं अटारीं।
प्रभु के बिनु सब गिरी परी हैं शाला भारीं।
अस्त अद्रि पै अर्क यथा हो गए मगन तहँ।
उग्र अनिल सौं भिन्न मेघ रवि विचरहिं प्रविसि जहँ।
नारी नूपुर कल करैं घोर निशा के काल।
पीतम हित (जहँ) उतरहीं संकेतहिं मैं बाल।

मंकेतहिं मैं चाल गए वे दिन अब भारी।
मुख में उलका लए फिरति हैं कुशिवा कारी।
इत उत आमिष हेतु राज पथ उजर निहारी।
सूल हूल मम होय हिये में यह बहु बारी॥

रघुवंश के सोलहवें सर्ग में अयोध्या की जिस दुर्गति का वर्णन कालिदास ने किया है उन्हीं के शब्दों में जगमोहन सिंह ने भी विजयराघव गढ की दुर्दशा का चित्र खींचा है। ऊपर की कुंडलिया पढकर बरबस कालिदास का यह श्लोक स्मरण आ जाता है :

निशासु भास्वत्कल नूपुराणा यः संचरोऽभूदभिसारिकाणाम्।
नंदन्मुखोल्काविचिताभिषाभि स वाह्यते राजपथ शिवाभिः॥

विजयराघव गढ की इस दुर्दशा का कारण दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। ठाकुर जगमोहन सिंह के प्रपितामह कछवाहा क्षत्रिय ठाकुर दुर्जन सिंह के दो पुत्रों—विष्णुसिंह और प्रयागदास—मे पिता की मृत्यु के पश्चात् सन् १८२६ मे जागीर के लिए झगड़ा हो गया और ईस्ट इंडिया कंपनी ने जागीर के दो भाग कर दोनों भाइयों को एक एक भाग दे दिया। बड़े भाई विष्णुसिंह को मैहर राज्य मिला और छोटे भाई प्रयागदास ने अपने भाग मे एक दुर्ग बनवाकर उसमे एक मंदिर विजयराघव का स्थापित किया और इस प्रकार विजयराघव गढ की स्थापना की। पड़ोसी बघेलों से झगड़ा होने पर उनके कई इलाके जीतकर और बुंदेलखंड के उपद्रवों में ईस्ट इंडिया कंपनी की सहायता कर पुरस्कार रूप मे कुछ भूखंड प्राप्त कर प्रयागदास ने अपने राज्य की अच्छी वृद्धि की। सन् १९४६ मे प्रयागदास की मृत्यु के समय उनके इकलौते पुत्र सरयूप्रसाद सिंह की अवस्था केवल पाँच वर्षों की थी। प्रयागदासने पुत्र की अल्पावस्था के कारण अपना इलाका कोर्ट आव वार्ड्स के अधीन कर दिया था जिससे वहाँ का प्रबंध एक सरकारी मैनेजर के हाथ

सौंप दिया गया। बालक राजा की ओट से अनेक स्वार्थी व्यक्तियों ने भाँति भाँति के षड्यंत्र किए और १८५७ के विप्लव में यह उपद्रव इतना बढ़ा कि सरकारी मैनेजर को प्राण खोने पड़े और इसका कुफल विजयराघव गढ़ नगर और उसके बालक राजा सरयूप्रसाद सिंह को भोगना पड़ा। इलाका तो जब्त हो ही गया साथ ही सरयूप्रसाद सिंह को काले पानी का दंड मिला, परंतु उससे पहले ही उस सत्रह वर्ष के बालक ने आत्महत्या कर ली।[१]

ठाकुर जगमोहन सिंह इसी दुर्भाग्यग्रस्त विजयराघव गढ़ के राजकुमार थे जिनका जन्म श्रावण शुक्ल चतुर्दशी सं० १९१४ को भारत व्यापी विप्लव के समय हुआ था। पिता ठाकुर सरयूप्रसाद की आत्महत्या के समय उनकी अवस्था केवल छः मास की थी। नौ वर्ष की अवस्था में भारत सरकार ने उन्हें शिक्षा के लिए काशी भेज दिया जहां वे वार्ड्स इंस्टीट्यूट, क्वीन्स कालेज में भर्ती किए गए। उनके लिए उस समय बीस रुपए मासिक पोलिटिकल पेन्शन नियत हुई, पर काशी के तत्कालीन कमिश्नर के प्रभाव से यह वृत्ति जीवन भर के लिए सौ रुपए मासिक की कर दी गई। काशी में उन्होंने बारह वर्ष विद्याध्ययन किया और संस्कृत, अँगरेजी और फ़ारसी के अतिरिक्त बँगला भाषा का भी अच्छा अभ्यास किया। उनके ये बारह वर्ष बहुत अच्छे कटे। 'देवयानी' में उन्होंने लिखा है:

रचे अनेक ग्रंथ जिन बालापन में काशी बासी।
द्वादश बरस बिताय चैन सों बिद्यारस गुन राशी।

काशी में अपने विद्याध्ययन के सम्बंध में 'श्यामा सरोजनी'' में उन्होंने लिखा है :

---

१ श्री ब्रजरत्नदास रचित 'भारतेन्दु-मंडल' के पृ० ८७-८८ के आधार पर।

बस्यो मधि देश अराम सग्राम चितै पुनि राघव दुर्ग नरेश ।
जहाँ तिन आत्मज दीन सुनो रहि काशी पढ़ी तहँ बानी सुरेश ।
रही तहँ अमल और सुधर्मी धवल मंगल दीन्हों महेश ।
सुजान सो बैयक के सतसंग सुनी जगमोहन सो लवलेश ।

अर्थात् सत्संग करके कवि ने काशी मे अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया परंतु काशी मे रहकर सबसे मूल्यवान वस्तु जो उन्होने प्राप्त की वह भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की मित्रता थी और 'मेघदूत' के अनुवाद में उन्होंने भारतेन्दु की सहायता भी कहीं कहीं ली है । भारतेन्दु का प्रभाव उनपर काफी पड़ा और उन्होने अपने साहित्य मे स्थान स्थान पर भारतेन्दु की कविताएँ उद्धृत की हैं । 'श्यामास्वप्न' मे तो श्यामसुंदर भारतेन्दु का बड़ा ही घनिष्ठ मित्र सा जान पड़ता है जो प्रायः उनकी कविताओं की उद्धरणी करता रहता है ।

सन् १८७८ में ठाकुर साहब ने अपना अध्ययन समाप्त किया और दो वर्ष घर पर रहकर १८८० मे मध्यप्रदेश के रायगढ जिले में धमतरी के तहसीलदार नियुक्त हुए । छत्तीसगढ के अंतर्गत शबरीनारायण मे ये बहुत दिनो तक मजिस्ट्रेट और तहसीलदार रहे । परंतु इस सेवा वृत्ति से ये प्रसन्न नहीं थे । 'श्यामा सरोजनी' में उन्होंने अपने हृदय की व्यथा इस प्रकार प्रकट की है :

छुटी घरनो धन धाम विराम कटु यह पूरब जन्म की रेख ।
सुशासक जो अब शासित ह्वै जगमोहन के यह कर्म को देख ॥

नौकरी करते हुए ये प्रमेह रोग से ग्रस्त हुए, डाक्टरो की सम्मति से जलवायु-परिवर्तन के लिए छः मास तक भिन्न भिन्न स्थानों में घूमे । रोग तो कम अवश्य हो गया परंतु जड़ से नहीं गया । अंत मे इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी और कूचबिहार की स्टेट-काउंसिल के मन्त्री का पद स्वीकार कर लिया । कूचबिहार के महाराज नृपेन्द्र नारायण भूप

बहादुर ने भी वार्ड् स स्कूल क्वीन्स कालेज में शिक्षा पाई थी और ठाकुर साहब के सहपाठी थे। कूचबिहार में ठाकुर साहब ने दो वर्षों तक बड़ी योग्यता से कार्य सम्पादन किया, पर रोग के कारण अंत में वहाँ से अवकाश ले घर लौट आए। रोग से उन्हें अंत तक छुटकारा नहीं मिला और केवल ४२ वर्ष की अल्प आयु में उन्होंने ४ मार्च सन् १८९९ में एक पुत्र और एक पुत्री छोड़ परलोक की यात्रा की।

ठाकुर साहब मुख्य रूप से कवि थे और बचपन से ही उन्होंने कविता करना प्रारम्भ कर दिया था। 'देवयानी' के अंत में उन्होंने अपनी रचनाओं की एक तालिका दी है जो इस प्रकार है :

> प्रथम पंजिका अँगरेजी में पुनि पिंगल ग्रंथ विचारा।
> करे भजिका मान विमानन प्रमिताक्षर कवि सारा॥
> बाल प्रमाद रची शुग पोथी खची प्रेम रस खासी।
> दोहा जाल प्रेमरतनाकर सो न जोग परकासी॥
> कालिदास के काव्य मनोहर उलथा किये विचारा।
> रितु संहारहिं मेघदूत पुनि सम्भव ईश कुमारा॥
> अंत बीसई बरस रच्यो पुनि प्रेमहजारा खासो।
> जीवनचरित रामलोचन को जो मम प्रान सखा सो।
> सज्जन अष्टक कष्ट माहिं मैं निरच्यौं मति अनुसारी।
> प्रेमलता सम्पत्ति बनाइ भाइ नव रस भारी॥
> एक नाटिका सुई नाम की रची बहुत दिन बीते।
> अब अट्ठाइस बरस बीच यह श्यामालता पिरीते॥
> श्यामा सुमिरि जगत श्यामामय श्यामा विनय बहोरी।
> जल थल नभ तरु पातन श्यामा श्यामा रूप भरो री॥
> देवयानि की कथा नेहमय रची बहुत चित लाई।
> श्रमणविलाप साप सौं कीन्हौं तन की ताप मिटाई॥

इनके अतिरिक्त भी इन्होंने कुछ कविताएँ लिखी हैं। 'ऋतुसंहार' सम्भवतः उनकी प्रथम प्रकाशित रचना है जो सं० १९३२ (१८७५ ई.) में प्रकाशित हुई। उससे पूर्व प्रेमरस से पूर्ण 'प्रेमरत्नाकर' नामक दोहों की पुस्तक उन्होंने लिखी थी जो प्रकाशन के अयोग्य समझ कर प्रकाशित नहीं कराया। फिर कालिदास के 'मेघदूत' और 'कुमार-सम्भव' तथा 'हंसदूत' का संस्कृत से अनुवाद किया। बायरन की एक अँगरेजी कविता 'प्रिजनर आव शिलन' का भी 'शिल्न का बंदी' रूप में अनुवाद किया। प्रेमहजारा, प्रेम सम्पत्तिलता, सज्जनाष्टक, ओंकार चंद्रिका, समरति पचासा, वानीवाई विलाप, प्रमिताक्षर दीपिका और श्रीरामलोचन प्रसाद का जीवनचरित आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं। 'सुई' नाम की एक नाटिका और कपिल के सांख्य सूत्रों का आर्या छंदों में अनुवाद भी इनकी रचनाएँ हैं जो प्रकाशित नहीं हुईं।

रचना की दृष्टि से सन् १८८५-८६ इनके जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ष रहे हैं। इन वर्षों में इन्होंने 'श्यामालता', 'श्यामास्वप्न', 'श्यामा विनय, देवयानी और 'श्यामा सरोजनी' की रचना की। इन सभी रचनाओं को श्यामा को समर्पित किया गया है और इनमें प्रेम की व्यंजना बहुत उत्कृष्ट हुई है। 'श्यामालता' की रचना का आरम्भ २१ दिसम्बर १८८४ का हुआ और समय समय पर कभी शवरीनारायण में, कभी रमणीक वन, पर्वत और झरनों के किनारे इसकी रचना हुई। इसमें १३२ छद हैं और इनमें आवे से अधिक सोना खान के विदित पर्वतों के तट पर निर्मित हुए। 'श्यामालता' के पश्चात् 'देवयानी' की रचना हुई जो महाभारत के आदि पर्व के ७३ से ८५ सर्गों तक का छंदबद्ध अनुवाद है। यह रचना सम्भवतः 'श्यामास्वप्न' और 'श्यामाविनय' की भूमिका रूप रचा गया क्योंकि 'श्यामास्वप्न' के कमलाकांत और श्यामासुंदर दोनों क्षत्रियकुमार होकर ब्राह्मणी श्यामा से प्रेम करते हैं जो तत्कालीन समाज की दृष्टि से दोष समझा गया। इस दोष का निराकरण करने के लिए

ही जैसे यह काव्य रचा गया। 'श्यामास्वप्न' में श्यामा जब इस अनमेल वर्ण-सम्बंध की ओर श्यामसुंदर का ध्यान आकृष्ट करती है तब श्यामसुंदर उसे समझाते हैं :

वर्णों के सम्बंध में कुछ दोष नहीं देवयानी और ययाति के पावन चरित अद्यापि भूमंडल को पवित्र करते हैं। (पृ० ९१)

देवयानी ब्राह्मणकुमारी थी और ययाति क्षत्रिय नरेश। जब इनके विवाह शास्त्र निहित हैं तो श्यामा-श्यामसुंदर का प्रेम अपराध कैसे हो सकता है — मानों इसी तर्क को उपस्थित करने के लिए इस काव्य की रचना हुई। 'देवयानी' के पश्चात् उसी वर्ष प्रस्तुत ग्रंथ 'श्यामास्वप्न' और 'श्यामा-विनय' की रचना जाड़ों में हुई और अगले वर्ष १८८६ में 'श्यामा सरोजनी' की रचना हुई जिसमें सब मिलाकर २०४ छंद हैं। इन सभी रचनाओं को पढ़कर ऐसा जान पड़ता है कि कवि ने १८८४ के आस-पास किसी ब्राह्मणकुमारी से सचमुच ही प्रेम किया था और उसी प्रेम के उल्लास और निराशा में एक-दो वर्ष में ही चार - चार उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की। इन सभी रचनाओं में आप बीती अनुभवों की व्यंजना हुई जान पड़ती है। 'श्यामा सरोजनी' के तीन सवैयों में कुछ इसी प्रकार की ध्वनि सुनाई पड़ती है :

उत <u>श्यामालता</u> रचि कै पहिले उरझी तन पादप में जो रही।
सिगरो जेहि भाव समर्पन में करि तर्पन इंद्रिन केर सही॥
तब फूली फली नव मल्लिका सी जगमोहन के उर माल सही।
सुरझी उरझी जु रही सुरझी अजहूँ नहिं हाय सो फड़ गही॥

'श्यामालता' की रचना के समय सम्भवतः प्रेम का विकास हो रहा था। आगे का सवैया देखिए :

सहि कै सब देश के हाय क्लेश हू जो तन रोग के पाले परे।
दुखदायक पीर शरीर रह्यो घन देखे बिदेश बिहाले परे॥

जगमोहन सो सब तुच्छ सो जानि गिन्यो नहिं रंचु ? साले परे।
जिय ठानि बड़ो पन रोपि रच्यो तब श्यामा सुस्वप्न के जाले परे ॥

'श्यामास्वप्न' में जो रोगग्रस्त हो जलवायु-परिवर्त्तन के लिए स्थान-स्थान पर घूमने का वर्णन है सम्भवतः उपर्युक्त सवैया में उसी रोग की ओर संकेत किया गया है। इसके आगे का सवैया इस प्रकार है :

यह चैत अचेत करै हमसे दुखियान को चाँदनी छार करै ।
पर ध्यान धरौं निसिवासर सो जेहि को मुहि नाम सुधार करै ॥
यह श्यामासरोजनी सांस लसै मन मानस हंसिनी हार करै ।
जगमोहन लोचन पूतरी लौं पल भीतर बैठि बिहार करै ॥

इसमें श्यामा के वियोग में विरह-व्यथा का उत्कृष्ट वर्णन हुआ है। 'श्यामा सरोजनी' की भूमिका में लिखा है कि 'श्यामास्वप्न' के पीछे इसी में हाथ लगाया और श्रीपुर में वसंतोत्सव तक इसे समाप्त कर दिया। इस ग्रंथ के समर्पण में, जो श्यामा को ही समर्पित किया गया है, कवि ने उपसंहार रूप में लिखा है :

"नेकी बदी जो बदी हुती भाल में, होनी हुती सु तो होय चुकी री"— पर यह तुम दृढ़ बाँध रखना कि मैं अद्यापि तेरा वही सेवक और वही दास हूँ जिसको तूने इस कलियुग में दर्शन देकर कृतार्थ किया था— अब आप अपनी दशा तो देखिये मैं तो यही कह कर मौन हो जाता हूँ—

जिनके हित त्यागि कै लोक की लाज को संग ही संग में फेरो कियो।
हरिचंद जू त्यों मग आवत जात मैं साथ घरी घरी घेरो कियो।
जिनके हित मैं बदनाम भई तिन नेकु कह्यो नहिं मेरो कियो।
हमैं व्याकुल छाड़ि कै हाय सखी कोउ और के जाय बसेरो कियो ॥

इससे भी यही प्रमाणित होता है कि उन्होंने जीवन में किसी से प्रेम करके निराशा पाई थी। 'श्यामास्वप्न' में श्यामा के दोनों ही प्रेमी—

कमलाकांत और श्यामसुंदर सूक्ष्म—दृष्टि से देखने पर कवि जगमोहन ही जान पड़ते हैं ; कारण डाकिनी के प्रभाव से कारामुक्त कमलाकांत अचा • नक अपने को कविता- कुटीर में पाते हैं जहाँ 'श्यामालता—कहीं सांख्य, कहीं योग—कहीं देवयानी के नूतन रचित पत्र' बिखरे पड़े हैं। यह 'श्यामालता' और 'देवयानी' स्वय जगमोहन सिंह की ही रचनाएँ हैं और सांख्य सूत्रों का आर्या छंदों में अनुवाद भी उन्हीं का किया है। अस्तु, कमलाकांत का कविता - कुटीर जगमोहन सिंह का ही कविता-कुटीर है। इसी प्रकार श्यामसुदर भी कविता-कुटीर में रहते और कविता करते हैं। श्यामा के कथनानुसार श्यामसुदर अपने एक प्राचीन मित्र का कवित्त नित्य रटते रहते थे। वह कवित्त भारतेन्दु हरिश्चंद्र का था जो कवि जगमोहन सिंह के एक प्राचीन मित्र थे। फिर श्यामा को पत्र लिखते हुए श्यामसुदर ने अपने एक प्रवीण मित्र के दो दोहे उद्धृत किए हैं। ये दोहे भारतेन्दु हरिश्चंद्र के 'प्रेम सरोवर' से लिए गए हैं। अस्तु, प्राचीन मित्र और प्रवीण मित्र के रूप मे भारतेन्दु हरिश्चंद्र का उल्लेख श्यामसुदर की कवि जगमोहन सिंह से एकरूपता प्रमाणित करता है। श्री व्रजरत्नदास ने भी 'श्यामास्वप्न' के सम्बध में लिखा है :

कुछ ऐसा ज्ञात होता है कि ठाकुर साहब ने कुछ अपनी बीती इसमें कही है।"

(भारतेन्दु मडल प्रथम सस्करण पृ० ६२)

'श्यामा सरोजनी' के पश्चात् कवि की किसी अन्य रचना का प्रकाशन नहीं हुआ। जान पड़ता है कि प्रेम के उल्लास और फिर निराशा के वेग में उन्होंने डेढ दो वर्षों में ही तीन-चार रचनाएँ कर डाली फिर आवेश कम होने पर वे शिथिल पड़ गए। अंतिम रचना वे 'जन कवी' नाम से लिखते रहे, इसमें जब जैसी तरग आई कुछ लिख लिया करते

थे। यह गद्य-पद्यमय रचना अपूर्ण और अप्रकाशित है।[१] स्फुट कविताएँ और समस्यापूर्तियाँ भी इन्होंने की हैं।

ठाकुर जगमोहन सिंह स्वतंत्र प्रकृति के एक प्रेमी कवि थे। इन्होंने केवल प्रकृति-वर्णन और शृंगाररस-पूर्ण रचना ही की। कालिदास के वे विशेष प्रेमी थे और उनकी तीन रचनाओं का उन्होंने हिंदी अनुवाद किया। बिहारी के दोहों और भारतेन्दु की रचनाओं पर भी वे मुग्ध रहते थे। भारतेन्दु के 'कविवचन सुधा' और 'हरिश्चंद चंद्रिका' के वे प्रवीण पाठक थे। 'कविवचन-सुधा' के १५ मई सन् १८७४ ई० के अंक में कार्तिकप्रसाद खत्री लिखित 'रेल का विकट खेल' एकांकी नाटक प्रकाशित हुआ था, 'श्यामास्वप्न' में उसके नांदी पाठ का सवैया उद्धृत किया गया है:

अगिनि वायु जल पृथवी नभ इन तत्वों का ही मेला है।
इच्छा कर्म सँजोगी इनजिन गारड आप अकेला है।
जीव लादि सब खींचत डोलत तन इसटेशन झेला है।
जयति अपूरब कारीगर जिन जगत रेल को रेला है॥
(पृ० २०२)

इसी प्रकार 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के भाद्रपद शुक्ल १ स० १९३७ के अंक में 'पच प्रपंच' शीर्षक स्तम्भ में कस्साई, कबूतर और बाज का संवाद इस प्रकार प्रकाशित हुआ था:

बाज़—अबे कस्साई वाले, जल्दी हलाल करता है कि एक झपट्टा तुझ-पर भी, वल्लाह ऐसी चंगुल मारूँगा कि मग़ज़ बाहर निकल आवैगा।

कस्साई—अभी मियाँ शाहबाज खाँ अभी।

कबूतर—"है इत लाल कपोत व्रत कठिन प्रीति की चाल।
मुख तें आहि न भाषिहैं निज मुख करहु हलाल।"

१—भारतेन्दु मंडल पृ० ९१

परंतु 'श्यामास्वप्न' में यथार्थवादी प्रवृत्ति का पूर्ण अभाव पाया जाता है। समर्पण में स्वयं लेखक ने लिखा है :

रात्रि के चार प्रहर होते हैं—इस स्वप्न में भी चार प्रहर के चार स्वप्न हैं, जगत् स्वप्नवत् है—तो यह भी स्वप्न ही है, मेरे लेख तो प्रत्यक्ष भी स्वप्न हैं—पर मेरा श्यामास्वप्न स्वप्न ही है :

इस स्वप्न में स्वप्न जैसी ही बातें हैं। उपन्यास के प्रधान तीनपात्रों—कमलाकांत, श्यामा और श्यामसुंदर—में कमलाकांत और श्यामसुंदर दोनों ही श्यामा के प्रेमी हैं और आदर्श प्रेमी हैं। कमलाकांत श्यामा के प्रेम के पीछे ही स्वयं अपने को डाइन के समर्पित कर देता है परंतु श्यामा के मुख से श्यामा - श्यामसुंदर की प्रणय-कथा सुनकर वह इतना प्रभावित हो उठता है कि जब चंडी उससे कहती है :

मैं तेरी भक्ति पर प्रसन्न हुई—वर माँग—

तब वह निस्संशय भाव से कहता है:

यदि तू प्रसन्न है तो मेरी वंदना की विनय पूरी कर—श्यामसुदर का पता बता दे और श्यामसुदर को श्यामा से मिला दे : (पृ० १५७)

कैसा अपूर्व यह आत्मत्याग है! श्यामसुंदर का प्रेम भी इसी प्रकार आदर्श है। स्वयं श्यामा ने कमलाकांत से स्वीकार किया था :

वे अपने प्रान को भी इतना नहीं चाहते थे. नैनों की तारा मैं ही थी. प्रेम-पिंजर की उनकी मैं ही सारिका थी ब्रह्म, ईश्वर, राम जो कुछ थी मैं थी, वे मुझे अनन्य भाव से मानते थे. (पृ० ७०)

श्यामसुदर श्यामा को इष्ट देवता के रूप में ही मानता था। कमलाकांत ने चंडी के प्रभाव से श्यामसुंदर को रामचंद्र के सामने 'दीन मलीन बना खाकी कुरती पहने सिर खोले बकुल माला की सेल्ही डाले बाघम्बर ओढ़े हाथ जोड़े विरही बना' भगवान की इस प्रकार स्तुति करते देखा था :

तुम सर्वज्ञ कहाय जौ न मम पीरहिं जोई।
तौ झूठे सब नाम तिहारे जगतल होई।
एक प्रेम अवलम्ब तुमहिं सूरत सु प्रेमकर।
गावत श्रुति व्यासादि भक्त प्रन रोपि रोपि धर।
जौ ऐसे कहवाय कै प्रेम मोर चीन्हो नहीं।
तौ रावरि सब कपट की बात गई खुलि तुरत ही॥
मोर विरह बस देह गई पचि सो किन जानहु।
अंतरजामी होय गोय यह हू तुम मानहु।
एक बरस लौं ध्याय ध्यान कर श्यामा केरा।
देव मनावत गए दिवस आसा बस फेरा॥
ता कहँ अंतरध्यान कर कहँ सोए तुम चक्रधर।
कै संगम भायो नहीं तुमहिं नाथ मम दीन कर॥
तुमरे पग सौं भई बिमाई सो भल जानहु।
नाथ गोपिका विरह दवागिन जरि जरि मानहु।
मान समय वृषभानु सुता के चरन पलोटे।
बस वियोग सहि विरह आँच परि सीस रारोटे।
अगनित कियो उपाव तुम विरह ताप टारन हिये।
सो अब जानि न आवई अहो दया क्यों नहिं हिये॥

(पृ० १५८–१५९)

श्यामसुंदर के पारदर्शी स्वच्छ हृदय में प्रेम की कितनी अपूर्व आभा जगमगा रही है। इसके विपरीत श्यामा का प्रगल्भ प्रेम बरसाती नदी के समान बढ़ता घटता रहता है। डेढ़ वर्ष पश्चात् ही श्यामा कमलाकांत को पहचान भी नहीं पाती। डाइन ने सच ही कहा था:

ओ तुच्छ मूर्ख—जड़—वह तेरी प्यारी जो इतने बड़े की बेटी है तुझे मिली जाती है क्या? कहाँ तू कहाँ वह? कहाँ सूर्य और कहाँ काँच, और फिर वह डेढ़ वर्ष तक क्या तेरे लिए बैठी है ? (...)

श्यामा रीतिकालीन नायिका की भाँति काम-कला-प्रवीणा और रति-अभिसार निपुणा है। चौदह वर्ष की वय में ही उसने पूरी चतुराई सीख ली है। जिस दिन पहली बार उसके हृदय में श्यामसुंदर का प्रेम अङ्कुरित हुआ था और उसकी चेष्टाओं से वृंदा ने सब कुछ जान लिया था, उस समय चतुर्दश वर्षीया श्यामा ने जिस चातुर्य का अभिनय किया उसे सुन कमलाकांत भी अपने को न रोक सके, टोक ही दिया कि:

वाहरी श्यामा १४ वर्ष में जब तुम इतनी चतुर थीं तब आगे न जाने क्या हुआ होगा. (पृ० ५४)

चातुर्य के साथ उसमें सौन्दर्य भी रीतिकालीन नायिका के ही तुल्य है। कवि ने श्यामा का जो नख-शिख वर्णन किया है वह प्राचीन रीति-कालीन कवियों की छाया लेकर ही लिखा गया है। बंकिमचंद्र चटर्जी ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'दुर्गेशनंदिनी' में आसमानी का रूप-वर्णन करने के पूर्व मंगलाचरण करते हुए लिखा था:

माँ (सरस्वती) तुम्हारे दो रूप हैं, जिस रूप से तुम कालिदास के लिए वरप्रद हुई थीं, जिस प्रकृति के प्रभाव से रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, शकुंतला निर्मित हुए थे, जिस प्रकृति का ध्यान करके वाल्मीकि ने रामायण, भवभूति ने उत्तर चरित और भारवि ने किरातार्जुनीय लिखा था, उस रूप से मेरे कंधे पर बैठ कर पीड़ा न देना; जिस मूर्ति का ध्यान कर श्रीहर्ष ने नैषध-चरित लिखा था, जिस प्रकृति के प्रसाद से भारतचंद्र ने विद्या का अपूर्व रूप वर्णन करके बंग देश का मन मोह लिया है। जिसके प्रसाद से दाशरथि राय का जन्म हुआ, जिस मूर्ति से आज भी 'बटतला' को प्रकाशित कर रही हो, उस मूर्ति से एक बार मेरे कंधों पर बैठो, मैं आसमानी के रूप का वर्णन करूं।

ऐसा जान पड़ता है कि माँ भारती की जिस मूर्ति का आवाहन कर

बंकिमचंद्र ने आसमानी का रूप-वर्णन किया था उसी मूर्ति के प्रभाव से जगमोहन सिंह ने श्यामा का रूप-वर्णन किया। यथाः

पकज का गुण न चंद्रमा में और न चंद्रमा का पंकज में होता है— तो भी इसका मुख दोनों की शोभा अनुभव करता था. काली काली भौंहैं कमान सी लगती थी, धनुष का काम न था, कामदेव ने इन्हें देखते ही अपने धनुष की चर्चा बिसरा दी. जब से इसे भगवान् शंकर ने भस्म कर दिया तब से यह और गरबीला हो इसी मिस इनसे धनुष का काम लेता था—विलोचन इन्दीवर पै भ्रमरावली, मुख-मदनमंदिर के तोरन—रागसागर की लहरें—ऐसी उसकी दोनों भौंहें थी. उसके नैनो की पलकें, तरुणतर केतकी के दल के सदृश दीर्घ किंचित् चटुल और किंचित् सालस शोभायमान थी. नैनों की कौन कहे. ये नैन ऐसे थे जिस्में नै न थी, जिसे देख हरिणी भी अपने पिछले पाँव के खुरों से खुजाने के मिस कहतीं थीं कि तुम अपने गर्व को छोड दो. हृदयवास के आगार में बैठे मदन के दोनों झरोखे—रागसहित भी निर्वाण के पद को पहुँचाने वाले, कान तक पहुँचने में अवरोध होने से अपने लाल कोयों के मिस कोप दिखाते—अशेष जगत को धवल करते—फूले कमल काननों से गगन को सनाथ करते—सैकड़ों क्षीरसागरों को उगिलते—और कुंद और नीलोत्पलों की माला की लक्ष्मी को हँस रहे थे मानो मन के भाव के साक्षी होकर हृदयागार के द्वार पर खडे हों. (पृ० २५–२६)

श्यामा के रूप-वर्णन मे कवि ने प्राचीन कवियों की अच्छी अच्छी और चुभती हुई उक्तियाँ भी यथास्थान समाविष्ट कर दी हैं। उदाहरण के लिए कवि ने श्यामा के रूप-वर्णन में लिखा है :

नव जोबन नरेश के प्रवेश होते ही अग के सिपाहियो ने बडी लूट मार मचाई इसी भौंसे में सभों के होंसे रह गए किसी ने कुच पाये किसी ने नितम्ब बिम्ब—पर यह न जान पड़ा कि बीच में कटि किसने लूट ली. (पृ० २८)

जो पद्माकर के इस सवैये की प्रतिध्वनि जान पड़ती है:

> ये अलि या बलि के अधरानि में आनि चढ़ी कछु माधुरई सी
> ज्यों पदमाकर माधुरी त्यों कुच दोउन की चढ़ती उनई सी।
> ज्यों कुच त्यों ही नितम्ब चढ़े कछु ज्यों ही नितम्ब त्यों चातुरई सी।
> जानि न ऐसी चढ़ा चढ़ी में कहि धौं कटि बीच ही लूटि लई सी॥

इसी प्रकार कवि के इस वर्णन में:

> लंक के लूटने की शंका केवल कुच और नितम्बों की थी क्योंकि जोबन महीप ने जब इस द्वीप पर अमल किया तब डंका बजाकर मम से केवल ये ही बढ़े. (पृ० २८)

आलम-शेख तथा बिहारी के निम्नांकित दोहों का प्रभाव स्पष्ट है:

> कनक-छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन ?
> कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन।
> अपने तन के जानि के जोबन नृपति नवीन।
> स्तन, मन, नैन, नितम्ब को बढ़ो इजाफा कीन॥

और श्यामा के उरोजों का वर्णन करता हुआ जब कवि लिखता है:

> मदन के मानों उलटे नगारे हों, मदन महीप के मंदिर के मानो दो हेम कलस, बेलफल से सुफल–ताल फल से रसीले, कनक के कंदुक—मनोज-बाल के खेलने की गेंदे—ऐसे अविरल जिनमें कमल तंतु के रहने का भी अवकाश नहीं.(पृ० २७)

तब ऐसा जान पड़ता है कि उसके मानस में प्राचीन कवियों की इस प्रकार की उक्तियाँ तैर रही थीं:

> कैसे रतिरानी के सिंधोरे कवि 'श्रीपति' जू,
> [illegible]त के सरोरुह सवारे हैं।

कैसे कलधौत के सरोरुह सवारे कहि
जैसे रूप नट के बटा से छवि ढारे हैं।
कैसे रूप नट के बटा से छवि ढारे कहु .
जैसे काम भूपति के उलटे नगारे हैं।
कैसे काम भूपति के उलटे नगारे कहु
जैसे प्राणप्यारी ऊँचे उरज तिहारे हैं॥
संपुट सरोज कैधों सोभा के सरोवर में,
लसत सिंगार के निसान अधिकारी के।
कवि पजनेस लोल चित्त वित्त चोरिवे को
चोर इक ठौर नारि ग्रीव वरकारी के।
मंदिर मनोज के ललित कुंभ कंचन के
कलित फलित कैधौं श्रीफल विहारी के।
उरज उठौना, चक्रवाकन के छौना कैधौं
मदन खिलौना ये सलौना प्रानप्यारी के॥

श्यामा जैसी रीतिकालीन नायिका की सखी वृन्दा तो उससे भी बढ़ी चढ़ी है। कवि ने उसका जो वर्णन किया है वह इस प्रकार है:

सुमार्ग से कुमार्ग पहुँचाने की मशाल—दुष्ट पथ की परिचारिका, विलासियों की सहचारिका—द्रव्य के लिए तन और मन की हारिका—सुमति वाली वालाओं के मन में कुमति की कारिका—'वुढ़ियावखान' सी पुस्तकों की धारिका—अपने भक्तों पर जीवन की हारिका—अच्छे अच्छे कुलों का चौका लगाने वाली—अभिसारिकाओं की नौका—ऐसी प्रगल्भ मानों ढोंका—मदन पाठशाला की वालाओं को परकीयत्व धर्मशास्त्र सिखाने की परिभाषा—'परिपतिसंगम' रूप को कन्दर्प व्याकरण से सिद्ध कराने वाली—रति वेदांत की परिपाटी सिखाने वाली—सुमति-लोप-विधायक सूत्र को कंठ कराने वाली—कुपंथ सरिता की सेतु—मदन-

गीता महामाला मन्त्र की ऋषि–सुरति सिद्ध कराने की आचार्य—कामानल में हवन कराने की होता—परपुरुष-आलिंगन तीर्थ में उतरने की सीढ़ी—इत्यादि (पृ० ३१)

इस प्रकार इस उपन्यास के चरित्र सभी प्रकार विशेष (Types) हैं और ये प्रकार विशेष रीतिकालीन काव्य के हैं। कमलाकांत और श्यामसुंदर अनुकूल नायक हैं, श्यामा मुग्धा अनूढा परकीया नायिका है और वृन्दा सखी और दूती है। ये सभी के सभी कवि और सहृदय हैं। जहाँ वे आशुकविता करने में असमर्थ हैं वहाँ अन्य कवियों की कविताएँ सुनाया करते हैं। ये कविताएँ शृंगार रस से सराबोर हैं। इस प्रकार इस उपन्यास का सारा वातावरण बहुत कुछ रीतिकालीन परम्परा सम्मत और अयथार्थ हो गया है। इस अयथार्थ वातावरण में स्वप्न की अतर्क्य और अनबूझ घटना-परम्परा ने उपन्यास का सारा कथानक बहुत जटिल और असंगत बना दिया है। स्वयं कवि को इसका बोध है इसीलिए तो वह स्वयं कह देता है :

> बहुत ठौर उनमत्त काव्य रचि जाको अर्थ कठोरा।
> समुझि जात नहिं कैहूँ भाँतिन सब्द सब्द अघोरा।
> सपनो याहि जानि मुँहि छमियो बिनवत हौं कर जोरी॥
>
> (पृ० १६३)

तृतीय और चतुर्थ प्रहर के स्वप्न में इस प्रकार के उन्मत्त काव्य आवश्यकता से अधिक हैं। प्रथम और द्वितीय प्रहर के स्वप्न में मुख्य कथा के नायक–नायिका का परिचय, उनका एक दिन अचानक चार आँखें होने

परंतु तीसरे प्रहर के स्वप्न से अस्वाभाविकता, जटिलता और असंगति का प्रवेश होता है। श्यामा के दोनों प्रेमी कमलाकांत और श्यामसुंदर में क्या सम्बन्ध है इस एक प्रश्न ने भी जटिलता ला दी है। इस जटिलता का समाधान स्वयं कवि ने भी नहीं किया उसने तो कमलाकांत से केवल इतना ही कहला दिया कि

श्यामसुंदर मुझे अपना प्राचीन मित्र जान कहने लगा, कि संबध, बस, जैसे देह और देही का—स्थूल और लिंग शरीर का हम लोगों में भेद नहीं था, इस मित्रता की कथा का स्वप्न नहीं हुआ इसी से इस स्थल पर नहीं लिखी. (पृ० १२१)

परंतु इसमें संदेह नहीं कि कमलाकांत और श्यामसुंदर दोनों एक से ही हैं—कवि, सहृदय, आदर्श प्रेमी; और सम्भवतः दोनों ही कवि जगमोहन सिंह की प्रतिकृति हैं। इन देह और देही तथा स्थूल शरीर और लिंग शरीर के सम्बन्ध से सम्बन्धित दोनों प्रेमियों के मिलन और प्रेमालाप की कथा जटिलता से आच्छादित है। जहाँ तक स्थूल शरीर रूप श्यामसुंदर के स्थूल कार्य-कलाप—प्रेम, विरह-निवेदन, अभिसार और समागम की कथा है वह तो सहज स्वाभाविक रूप में कह दी गई है, परंतु जहाँ देही अथवा लिंग शरीर रूप कमलाकांत के सूक्ष्म कार्य-कलाप की कथा आती है वहाँ स्वप्न की जटिलता और कल्पना की अतर्क्य असंगति प्रवेश करती है और कवि को विवश होकर 'उनमत्त काव्य' का सहारा लेना पड़ता है। तृतीय और चतुर्थ प्रहर के स्वप्न में अधिकांश ऐसी बातें दिखाई गई हैं जिनका सम्बन्ध या तो भारतेन्दु युग के तत्कालीन यथार्थ और कल्पना मिश्रित तथ्यों पर आधारित हैं अथवा पुराणों की वैज्ञानिक दृष्टि से अयथार्थ और कपोल-कल्पना जान पड़ने वाली-बातों पर। उदाहरण के लिए दरेतदीर वाले की दूकान से एक जोड़ी चश्मा मोल लाने की बात का आधार 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' (चैत्र वैशाख सं० १९३७) की एक सूचना थी कि:

कलकत्ते वाले सार सुधानिधि साप्ताहिक पत्र में सलोमन कम्पनी चश्मेवाले का विज्ञापन छपता है उसकी हाट से एक अच्छा और बढ़िया चश्मा मँगवा कर नाक पर रखो.

और इसी आधार पर कल्पना का सहारा लेकर कवि स्वप्न में वर्णन करता है :

स्टेशन तो हैमिल्टन साहब की दूकान था. वाहरे ईश्वर ! मनोरथ पूरा हुआ. चश्मा मिलने की आस लगी. दूकान पर उतरे. एक गोरी थोरी वैसवाली निकल आई. इस गोरी के पीछे एक पुछ भी थी. मैंने तो ऐसी स्त्री कभी नहीं देखी थी. मुख मनोहर और वदन मदन का सदन था. इस कामिनी के कुच कलशों पर दो बंदर नाचते थे, इनके नाम वंशाधिकारी और पाखंड थे. इन बंदरों के (की) पूछ से कपट और घात नाम के दो बच्चे और लटकते थे. मैंने ऐसी लीला कभी नहीं देखो थी. करम ठोका आश्चर्य किया. साहस कर दूकान के भीतर जा पूछने लगा "गोरी तेरी दूकान में एक जोड़ चश्मा मिलेगा ?" उसने त्यूरीचढ़ा के उत्तर दिया "मूर्ख द्वापर और त्रेता में कभी चश्मा था भी कि तू माँगता है . तब सभी लोगों की दृष्टि अविकार रहती थी , यह तो कलियुग में जब लोग आँख रहते भी अंधे होने लगे तब चश्मा भी किसी महापुरुष ने चला दिया , मुझे नहीं जानता मैं पाखंडप्रिया अभी श्वेत द्वीप से चली आती हूँ, मैं फणीश की बहन हूँ, देख बिना चश्मा के तू देख लेगा कि मैं कैसी हूँ और मेरा रूप कैसा आश्चर्यमय है ." इत्यादि (पृ० ११४-११५)

उन्नीसवीं शताब्दी मे पाश्चात्य वैज्ञानिकों के वैज्ञानिक आविष्कारों ने जनता को चकित कर रखा था और साथ ही अँगरेजी दूकानो पर वेचनेवाली सुसज्जित अँगरेज महिलाएँ भी उस युग की जनता के लिए कुछ कम कुतूहलजनक नहीं थीं। इसी आश्चर्य और कुतूहल

का आभास उपर्युक्त उद्धरण में मिलेगा। इसी प्रकार 'श्यामास्वप्न' में रेल की चर्चा भी युग का प्रभाव प्रकट करता है। इस प्रकार 'श्यामास्वप्न' में स्वप्न रूप में उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक कुतूहल-जनक तथ्यों के साथ प्राचीन पौराणिक कुतूहलजनक बातों का समावेश कर कुछ अद्भुत बातें भी लिख दी गई हैं जिससे उपन्यास का कथानक जटिल, असंगत और अयथार्थ हो गया है।

इस रीतिकालीन वातावरण के चित्रों से पूर्ण जटिल और असंगत कथा-वस्तु तथा उन्मत्त काव्य से युक्त 'श्यामास्वप्न' को उपन्यास कहना युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता यद्यपि लेखक ने स्वयं इसे an original novel—एक मौलिक उपन्यास अथवा प्रबंध कल्पना लिखा है। साहित्य-रूप की दृष्टि से इसे प्राचीनकालीन कथा, आख्यायिका और चम्पू काव्य की श्रेणी में रखना अधिक समीचीन होगा, आधुनिक युग के उपन्यासों में इसे स्थान नहीं मिल सकता; क्योंकि उपन्यास आधुनिक युग की सामान्य जनता की वस्तु है जिसे मुद्रण यंत्रों ने सुलभ बना दिया है। वह सामंत वर्ग के अवकाश काल के मनोविनोद की सामग्री नहीं जो राज्याश्रित कवियों द्वारा उपस्थित किया जाता था। अस्तु, 'श्यामास्वप्न' एक चम्पू काव्य है जिनमें उपक्रम और उपसंहार के रूप में एक स्वप्न की भूमिका दे दी गई है।

इस चम्पू काव्य में गद्य के बीच बीच में काव्य पर्याप्त परिमाण में उपलब्ध हैं। कवि ने अपनी पद्य-रचना तो थोड़ी ही दी है, अन्य कवियों—देव, बिहारी, तुलसीदास, पद्माकर, पजनेस, रसखान, श्रीपति, बलभद्र, गिरिधर दास और भारतेन्दु हरिश्चंद्र की रचनाएँ पर्याप्त मात्रा में दी हैं। इनमें भारतेन्दु हरिश्चंद्र की रचनाएँ तो बहुत अधिक दी गई हैं। पद्यों में ही नहीं गद्य में भी कहीं कहीं भारतेन्दु के छंदों का अनुवाद ही दे दिया गया है। एक उदाहरण देखिए:

एक दिन वे अचानक मेरे द्वारे आन कढ़े मैं अपनी अटा पै ठाढ़ी रही—वे मो तन देख हँस पड़े, पर मैं लाज के मारे भौन के भीतर भाज गई. उसी दिन से इन कुचाइन चवाइयों ने मिलि के चौंचद पारा
(पृष्ठ ६०)

यह गद्यांश इस सवैया का रूपांतर मात्र है :

जा दिन लाल बजावत वेनु अचानक आय कढ़े मम द्वारे।
हौं रही ठाढ़ी अटा अपने लखि कै हँसे मो तन नंद-दुलारे।
लाजि कै भाजि गई "हरिचंद" हौं भौन के भीतर भीति के मारे।
ताही दिना तें चवाइनहूँ मिलि हाय चवाय कै चौंचँद पारे।

इस अनुवाद के पीछे कवि ने गद्य में भी ब्रजभाषा लिख मारा है, यथा—आन कढ़े, अटा पै ठाढ़ी रही , मो तन (मेरी ओर), भौन के भीतर भाज गई कुचाइन चवाइयों ने मिलि के चौंचँद पारा, इत्यादि

हिंदी कवियों के अतिरिक्त संस्कृत कवियों—विशेषकर कालिदास और भवभूति के छंदों का उपयोग भी इस ग्रंथ मे पर्याप्त किया गया है। मेघदूत के मंदाक्रांता तो लेखक ने उद्धृत किए ही हैं दंडकारण्य के वर्णन मे भवभूति के उत्तरचरित के दंडकारण्य की छाया भी स्पष्ट है। जब कवि लिखता है :

मैं कहां तक इस सुंदर देश का वर्णन करूँ . कहीं कहीं कोमल कोमल श्याम—कहीं भयंकर और रूखे सूखे वन—कहीं झरनों का झंकार, कहीं तीर्थ के आकार—मनोहर मनोहर दिखाते हैं कहीं कोई बनैला जंतु प्रचंड स्वर से बोलता है—कहीं कोई मौन हो होकर डोलता है—कहीं विहंगमों का शोर कहीं निष्कूजित निकुंजों के छोर—कहीं नाचते हुए मोर—कहीं विचित्र तमचोर—कहीं स्वेच्छाहार विहार करके सोते हुए अजगर जिनका गम्भीर घोष कंदरों में प्रतिध्वनित हो रहा है—कहीं भुजगों की स्वास से अग्नि की ज्वाला प्रदीप्त होती है—

कहीं बड़े बड़े भारी भीम भयानक अजगर सूर्य के (की) किरणों में घाम लेते हैं जिनके प्यासे मुखों पर झरनों के कनूके पड़ते हैं—शोभित है—(पृ० ४०)

तब यह वर्णन इन श्लोकों का अनुवाद ही जान पड़ता है :

> स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरूक्षाः
> स्थाने स्थाने मुखरककुभो झाङ्कृतैर्निर्झराणाम् ।
> एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः
> सन्दृश्यन्ते । परिचितभुवो दण्डकारण्यभागाः ॥
> निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोचण्डसत्त्वस्वनाः
> स्वेच्छासुप्तगभीरघोर भुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः ।
> सीमानः प्रदरोदरेषु विलसत्स्वल्पाम्भसो यास्वयं
> तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते ॥[1]

१—इन श्लोकों का अनुवाद सत्यनारायण कविरत्न ने इस प्रकार किया है :

> कहुँ सजल सस्य स्यामल रसाल,
> कहुँ रूखो सूखो अति कराल ।
> कहुँ कहुँ झरना झर-झर निनाद,
> जहँ गूँजि करत दस दिसि सनाद ।
> उन तीरथ आश्रम गिरि समेत,
> सर सरित गर्भ-कानन निकेत ।
> पूरब-परिचित सो भुवन जोइ,
> दीसत दंडक वन यँही सोइ ॥
> निरशब्द शांतिमय कहुँ अखंड,
> वन-जन्तु नाद सों कहुँ प्रचंड ।

आगे के दो अनुच्छेद (पृष्ठ ४०) भी उत्तर-रामचरित के निम्नलिखित श्लोकों के रूपांतर मात्र हैं :

इह समदशकुन्ताक्रांतवानीरवीरुत्-
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति ।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुंज-
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः ॥
दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना-
मनुरसितगुरूणि स्त्यानमम्बूकृतानि ।
शिशिरकटुकषायः स्त्यायते सल्लकीना-
मिभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः ॥[1]

जहँ लपलपात रसना अपार,
मुख सों सोवत अहि फन पसार ।
तिन तप्त साँस सन कहुँ विसाल,
जरि उठत भयंकर ज्वाल माल ।
दै गई भूमि जहँ पै दरार,
दीसत कछु कछु जल तिन मँझार ।
अजगर - श्रम - सीकर भासमान,
प्यासे गिरगट तिहि करत पान ॥

१ इन श्लोकों का अनुवाद सत्यनारायण कविरत्न ने इस प्रकार किया है :

यहिं बेतस बल्लरी पै खग बैठि कलोल भरे मृदु बोल सुनावें ।
तिनसों झरे पुष्प-सुगंधित तोय वहँ अति सीतल शीतल भावें ।
फल पुंज पकेनि के कारन स्यामल मंजुल जम्बु निकुंज लखावें ।
उनमें रुकि कें करि घोर घनी झरनानि के स्रोत समूह सुहावें ॥

साराश यह कि 'श्यामास्वप्न' के रचयिता का अध्ययन बड़ा ही विस्तृत था। संस्कृत और हिन्दी के काव्यों का रस निचोड़ कर उन्होने इस 'श्यामास्वप्न' मे भर देने का प्रयत्न किया है। प्रकृति-वर्णन की प्रेरणा उन्हें संस्कृत कवियों से मिली और श्रृंगार-वर्णन की प्रेरणा हिन्दी के रीतिकालीन कवियों से।

जगमोहन सिंह की अपनी काव्य-रचना मे भारतेन्दु हरिश्चंद्र का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। रीतिकालीन अलंकारप्रियता और चमत्कार के स्थान पर भारतेन्दु ने रसात्मकता और स्वाभाविकता को विशेष महत्व दिया और भारतेन्दु की रचना में जो रसात्मकता और स्वाभाविकता है, जगमोहन सिंह की कविता में भी उसी प्रकार की सरल, सहज स्वाभाविकता और सरसता मिलती है। उदाहरण के लिए देखिए:

> कौन कहैगो हमैं "पिय प्यारे सुनो मनमोहन ए बतियाँ।
> तुम आवो अचानक गेह तहाँ तुहि लायहौ आनँद सो छतियाँ।
> पल पायहै डारि रहौंगी हटी देवहौं हर छोड़ि अधीरतियाँ।
> पुनि मूदहुँगी निज अक में बाहु पसारिके" ऐसी लिखी पतियाँ॥
>
> (पृ० १६९)

> अब कौन रहाँ मुहि धीर धरावतो को लिखि है रस की पतियाँ।
> "सब कारज धीरज में निवहै निवहै नहिं धीर बिना छतियाँ।

> इन सोहनि मे दल रीछनि को बसि जोबन जोर मरोर जतावैं।
> गिरि-गूँज के संगें उमंग भन्यो, भयकारी धुनी घनघोर मचावैं।
> कहुँ कुंजर सो रूँदि कुन्दरवी कुचिली निज गाँठिन कों दरसावैं।
> तिनसों कहुँ सीतल औंर कसाय चुई रस-गंधि चहूँ छिति छावैं॥

फलिहै कुसमी नहि कोटि करौ तरु केतिक नीर सिचौं रतियाँ।"
जगमोहन वे सपने भी भई सु गई सुअ नेह भरी बतियाँ॥
(पृ० १७४)

परंतु जहाँ यह सरसता और स्वाभाविकता नहीं है वहाँ शब्दालंकारों का चमत्कार और चित्रकाव्य का कौशल भी प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए देखिए:

लागैगो पावस अमावस सी अंधयारी जामे
कोकिल कुहुकि कूक अतन तपावैगो।
पावैगो अघोर दुःख मैन के मरोरन सों,
सोरन सों मोरन के जिय हू जलावैगो।
लावैगो कपूरहू की धूर तन पूर घिसि
भार नहीं कोऊ हाय चित्त को घटावैगो।
ठावैगो वियोग जगमोहन कुसोग आली
विरह समीर बीर अंग जब लागैगो॥ (पृ० ११७)

इसमें वर्षाऋतु में प्रकृति क उद्दीपन विभाव के रूप में सुंदर वर्णन तो है ही साथ ही यमक और अनुप्रास की छटा भी दर्शनीय है; और चित्रकाव्य के रूप में सिंहावलोकन का निर्वाह सुंदर हुआ है। प्रथम चरण के अंतिम शब्द 'तपावैगो' के 'पावैगो' से द्वितीय चरण का आरंभ होता है और द्वितीय चरण के अंतिम शब्द 'जलावैगो' के 'लावैगो' से तीसरे चरण का आरम्भ होता है। इसी प्रकार तीसरे चरण के अंतिम शब्द 'घटावैगो' के 'टावैगो' के स्थान पर 'ठावैगो' से चतुर्थ चरण का आरंभ है और चतुर्थ चरण के अंतिम शब्द 'लागैगो' से कवित्त के प्रथम चरण का आरम्भ है। इस प्रकार सिंहावलोकन चित्रकाव्य का पूर्ण निर्वाह है। यह सिंहावलोकन कवि को विशेष प्रिय जान पड़ता है क्योंकि अनेक सवैयों में कवि ने इस चित्रकाव्य को प्रदर्शित किया है। एक अन्य उदाहरण देखिए:

को रन पावस जीति सकै लहकारैं जवै इत मोरन सोरन।
सोरन सों पपिहा अधरात उठै जिय पीर अधीर करोरन।
रोरन मेघ चमंकत बिज्जु गसै अब नैन सनेह के डोरन।
डोरन प्रेम की आय गहो जगमोहन श्याम करो दग कोरन॥

छंदों में ठाकुर जगमोहन सिंह को दोहा, सवैया, कवित्त, कुंडलिया, सोरठा, और बरवै विशेष प्रिय हैं। 'ऋतुसंहार' की भूमिका में उन्होंने दोहा और कुंडलिका के प्रति अपने विशेष अनुराग का निर्देश किया है। प्रकृति-वर्णन के लिए उन्होंने कुंडलिका (कुंडलिया) का विशेष प्रयोग किया है।

गद्य में भी 'श्यामास्वप्न' के रचयिता ने यमक और अनुप्रास का विशेष कौशल प्रदर्शित किया है। 'श्यामास्वप्न' का प्रारंभ कवि ने ऐसी ही भाषा से किया है :

आज भोर यदि तमचोर के रोर से, जो निकट की खोर ही में जोर से सोर किया, नींद न खुल जाती तो न जाने क्या क्या वस्तु देखने में आती. इतने ही में किसी महात्मा ने ऐसी परभाती गाई कि फिर वह आनन्द सम्पत्ति हाथ न आई! वाहरे ईश्वर! तेरे सरीखा जंजालिया कोई जालिया भी न निकलैगा. तेरे रूप और गुण दोनों वर्णन के बाहर हैं! आज क्या क्या तमाशे दिखलाए, यह तो व्यर्थ था क्योंकि प्रतिदिन इस संसार में तू तमाशा दिखलाता है ही. कोई निराशा में सिर पीट रहा है, कोई जीवाशा में भूला है, कोई मिथ्याशा ही कर रहा है, कोई नैन के चैन का प्यासा है, और जलविहीन दीन मीन के सदृश तलफ रहा है—(पृ० ५)

इसमें भोर, तमचोर, रोर, खोर, जोर और सोर; जंजालिया और जालिया; निराशा, जीवाशा, मिथ्याशा और प्यासा; नैन और चैन; तथा विहीन, दीन औरमीन के यमक के अतिरिक्त 'इतने ही में' से लेकर

'हाय न आई' वाक्य में अन्त्यानुप्रास (तुक) लाने का भी प्रयत्न है। यमक के लोभ से ही तमचुर, जो संस्कृत ताम्रचूड़ का अपभ्रंश है तमचोर कर दिया गया है। इस प्रकार अनुप्रास और यमक लाने का जहाँ तहाँ सचेतन प्रयास पुस्तक में आदि से अंत तक मिलता है जो पिछले खेवे के रीतिकालीन कवियों का ही प्रभाव है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक की भाषा बहुत ही अव्यवस्थित है। खड़ी बोली गद्य में कहीं कहीं ब्रजभाषा के प्रयोग, कहीं बुन्देलखंडी शब्द भंडार मिलते रहते हैं और व्याकरण-संबंधी अशुद्धियों का तो कुछ कहना ही नहीं—प्रत्येक पृष्ठ में दो-चार अशुद्धियाँ तो साधारण बात हैं। एक उदाहरण देखिए :

> जब जब मेरी और उनकी चार आँखें होतीं मेरा बदन कदम्ब का फूल हो जाता. आँखों में पानी भर आता और तन में पसीने के बूँद झलक उठते, जाँघें थरथरा उठतीं, बदन ढीले पड़ जाते और वसन शिथिल हो जाते श्यामसुंदर भी कभी कभी कहते कहते रुक जाता—रसना लटपटा जाती, और की और बात मुँह से निकल परती, फिर कुछ रुक कर सोचता और कथा की टूटी डोर सी गह लेता . चकित होकर वृंदा की ओर देखता कि कहीं उसने यह दशा लख न ली हो. (पृ० ५६)

स्पष्ट है कि यह भाषा काव्य के लिए उपयुक्त मानी जा सकती है परंतु गद्य के लिए अत्यंत अव्यवस्थित ही मानी जायगी। 'तन में पसीने के बूंद झलक उठते' व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है—'तन में पसीने की बूँदें झलक उठतीं' होना चाहिए था, फिर 'निकल परती', 'टूटी डोर सी गह लेता', 'यह दशा लख न ली हो' आदि प्रयोग ब्रजभाषा के हैं और, काव्य के लिए ही विशेष उपयुक्त हैं खड़ी बोली-गद्य में 'गह लेना', 'लखना' आदि का व्यवहार नहीं होता। सच तो यह है कि जगमोहन सिंह कवि थे और काव्य की भाषा ही वे लिख सकते थे और उसी

भाषा को उन्होंने गद्य का रूप दिया जिसके कारण वह नितांत अव्यवस्थित और शिथिल हो गई है।

'श्यामास्वप्न' में स्थान स्थान पर भाषा बड़ी ही संस्कृत-गर्भित और तत्सम-प्रधान हो गई है। संस्कृत काव्यों के प्रभाव से कवि ने जहाँ तहाँ जो प्रकृति-वर्णन किए हैं उनमें भाषा संस्कृतनिष्ठ और अलंकृत हो गई है, परंतु अन्य स्थानों पर इस ग्रंथ की भाषा में तद्भव शब्दों की ही प्रधानता है जो 'हरिश्चंद्री हिन्दी' की विशेषता है। वर्णन इनके बड़े ही स्वाभाविक और सुंदर हैं परंतु उनमें रीतिकालीन परंपरा की स्पष्ट छाप है। चतुर्थ याम के स्वप्न के प्रारंभ में प्रभात का वर्णन करते हुए कवि ने खंडिता नायिका के विषाद और व्यंग्य को ही प्रधानता दी है, उसका यथार्थवादी चित्रण वह नहीं कर सका। सच तो यह है कि जगमोहन सिंह भाषा, भाव, वातावरण और वर्णन-शैली सभी दृष्टियों से रीतिकालीन हैं, उससे ऊपर वे कहीं नहीं उठ सके। आधुनिक युग की आधुनिकता का प्रभाव उनके साहित्य में बहुत ही थोड़ा है।

आधुनिकता का जो थोड़ा सम्पर्क इस गद्य-काव्य में प्राप्त होता है वह उस विचार-धारा में है जिसके अनुसार कमलाकांत प्राचीन शास्त्रों के रचयिता ब्राह्मणों के प्रति अपना विद्रोह प्रकट करता है :

ब्राह्मणों ही के कर में कलम था मनमाना जो आया घिस दिया, राजाओं पर ऐसा बल रखते थे कि वे इनके मोम की नाक थे, या काष्ठ पुत्तलिका जिनकी डोर उनके हाथ में थी.

कमलाकांत का यह विद्रोह केवल इसलिए है कि वह क्षत्रियकुमार होकर ब्राह्मणकुमारी से प्रेम करता है विवाह का अभिलाषी है और अभिलाषा के कारण उसे बंदीगृह में डाल दिया गया है। वह स्वच्छंद प्रेम का समर्थक है और प्रेम तथा विवाह के संबंध में प्राचीन शास्त्रों का मत उसे मान्य नहीं है। परंतु शास्त्रों को अमान्य भी कैसे किया जाय ? इसीलिए

लेखक ने अपने पक्ष का समर्थन प्राचीन काव्य ग्रंथों के ही आधार पर किया है। ब्राह्मणकुमारी और क्षत्रियकुमार के विवाह को देवयानी और ययाति की कथा द्वारा शास्त्र-सम्मत बताया और गंधर्व विवाह की पुष्टि भी प्राचीन ग्रंथों द्वारा किया। श्यामसुंदर ने जब श्यामा से गंधर्व विवाह की बात उठाई तो वह समाज-भीरु बाला साहस कर बोल उठीः

मान्यवर! प्यारे! यह क्या व्यापार है? यह किस वेद का मार्ग है, यह किस न्याय की फक्किका है—किस वेदांत शास्त्र का मूल है—

इत्यादि (पृ० ९०)

इसके उत्तर में श्यामसुंदर ने कहा :

यदि शास्त्र तुमने बांचा हो तो मैं कहूँ—न्याय, वेदांत और वेदों का भेद यदि तुम जानती हो तो कहो? मेरी बात का प्रमाण करोगी या नहीं? मेरी दशा देखती हौ कि नहीं? धर्म अधर्म की सूक्ष्म गति चीन्हती हो तो कहो? सुनो—धन्य है तुम्हारे वज्रमय हृदय को जो तनिक नहीं पिघलता, मेरी ओर देखो और अपनी ओर देखो. मेरी करुणा और अपनी धीरता देखो. वेद शास्त्र की बात का यह उत्तर है—जो मेरे प्रवीन मित्र ने कहा है—

लोक लाज की गाठरी पहिले देहु डुबाय।
प्रेम सरोवर पथ में पाछे राखो पाय॥
प्रेम सरोवर की यहै तीरथ गैल प्रमान।
लोक लाज की गैल को देहु तिलजुलि दान॥

सो यह तो तुम कर ही चुकी हो. × × × × × × अब रहा धर्म अधर्म, उसका भी एक प्रकार से उत्तर हो चुका—

माधुरी—हाँ ऐसा होना भी तो उचित ही है। पर दोनों ओर से कुछ गुरुजन की सम्मति होनी अवश्य है।

(रति कुसुमायुध—डे० लाल खड्गबहादुर मल्ल पहली बार १८८५ खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर से प्रकाशित पृ० १४)

और भी इसी ग्रंथ के पृ० ४१ पर रति अपनी सखियों से कहती है :

सखी! वर्तमान समय के कई एक मूर्ख माता पिता जान-बूझकर पुत्र पुत्री को नष्ट करते हैं। यद्यपि स्त्रियों के लिए परम धर्म है उसका पति, चाहे कैसी ही कुरूप, निर्धन, मूर्ख, कुष्ट रोगी, बाल या वृद्ध हो, उसे ईश्वर तुल्य जानना और उसी की सेवा को सर्वोपरि समझना चाहिए। पर इससे यह अर्थ नहीं है कि अवश्य अयोग्य ही विवाह किए जायँ, और केवल किसी मूर्ख ब्राह्मण से जन्मपत्री दिखा लेने पर भरोसा कर लिया जाय। वरन पूर्वोक्त धर्म का निर्वाह तभी हो सक्ता है जब युवा होने पर परस्पर प्रेम वश ब्याह हुआ करे।

अस्तु, विवाह में प्रेम का महत्त्व बढ़ता ही जा रहा था। भारतेन्दु युग से पूर्व भी प्रेमी कवियों ने स्वच्छंद प्रेम की जय घोषणा की है, परंतु उसके संबंध में इस प्रकार तर्क और प्रमाण उपस्थित कर पुष्ट करने की प्रवृत्ति पहले नहीं थी, भारतेन्दु युग में ही पहले दिखाई पड़ी और 'श्यामास्वप्न' में भी इस स्वच्छंद प्रेम का समर्थन, किया गया है।

सब मिलाकर ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामास्वप्न' भारतेन्दु युग की एक विशिष्ट रचना है। एक ओर इसमें रीतिकालीन वातावरण, भाषा और भाव का सुंदर प्रतिनिधित्व है दूसरी ओर इसमें आधुनिक युग की आधुनिकता—गद्य का प्राधान्य और विद्रोह के स्वर—के भी दर्शन होते हैं। यह सच है कि इस रचना को गद्य की अपेक्षा काव्य कहना ही अधिक समीचीन है फिर भी इसमें गद्य लिखने की ओर प्रवृत्ति तो है, ही। स्वच्छंद प्रेम की इसमें उत्कृष्ट व्यंजना हुई है और प्रेम का

आदर्श उपस्थित करते हुए अंत में कवि ने पंचतंत्र और हितोपदेश तथा भर्तृहरि और शंकराचार्य के स्वर में स्वर मिलाकर यह भी लिख दिया है.

> पढ़ि यह स्वप्न विचारि लीजिए कितने दुख की खानी ।
> नारी कहै जगत पुरुषन को कहिए कथा बखानी ।
> शंभु स्वयंभू हरि हू जाके बल प्रभाव सब हेरे ।
> ते इन मृगनैनिन के घर के सदा दास बहु चेरे ।
> पै यामें कछु शक नहिं रंचुक नारि नरक सोपाना ।
> मित्र देय दुख दारुन देहिन मरे न कछू ठिकाना ॥
> योगी बार नार नर जोरे कहहुँ देखि सब रंगा ।
> निवृत्तरि सन वारि त्यागिए तजि वाको परसंगा ॥

स्वच्छंद और आदर्श प्रेम के उपसंहार - स्वरूप यह *निराला* का स्त्री-निन्दा के रूप में प्रकट हुआ है जो मध्यकालीन संतों की प्रतिध्वनि मात्र है ।

दुर्गाकुंड, बनारस ।
१ फरवरी, १९५४ ई०

श्रीकृष्ण लाल

श्री श्यामा पातु

श्यामास्वप्न

अर्थात् गद्य प्रधान, चार खंडों में एक कल्पना .

"तन तरु चढ़ि रस चूसि सब फूली फली न रीति।
पिय अकास वेली भई तुअ निरमूलक प्रीति।।"

"है इत लाल कपोत व्रत कठिन प्रीति की चाल।
मुख से आह न भाखि हैं निज सुख करहु हलाल ॥"

(हरिश्चंद्र)

"यदि वांछसि परपदमारोढुं मैत्रीं परिहर सह वनिताभिः।
मुह्यति मुनिरपि विषयासंगाच्चित्रा भवति हि मनसो वृत्तिः॥"

ऋतु-संहार, मेघदूत, कुमारसंभव, देवयानी, श्यामालता,
प्रेमसम्पत्तिलता, सज्जनाष्टक इत्यादि काव्यों
के अनुवादक और प्रणेता

विजयराघवगढ़ाधिपात्मज
श्री ठाकुर जगन्मोहन सिंह, एम. आर. ए. एस्.
ग्रेट ब्रिटेन और आइरलैंड विरचित

१, श्री

समर्पण

श्रीमत् हृदयंगम बाबू मंगलप्रसाद मणिजू—कन्होली .

प्रियतम !

तुम मेरी नूतन और प्राचीन दशा को भलीभांति जानते हो—मेरा तुमसे कुछ भी नहीं छिपा तो इसके पढ़ने, सुनने और जानने के पात्र तुम ही हो तुम नहीं तो और कौन होगा ? कोई नहीं . श्यामालता के वेत्ता तो आप हो न ? यह उसी संबंध का श्यामास्वप्न भी बनाकर प्रकट करता हूँ . रात्रि के चार प्रहर होते हैं—इस स्वप्न में भी चार प्रहर के चार स्वप्न हैं . जगत् स्वप्नवत् है—तो यह भी स्वप्न ही है. मेरे लेख तो प्रत्यक्ष भी स्वप्न है—पर मेरा श्यामास्वप्न स्वप्न ही है . अधिक कहने का अवसर नहीं

प्रेमपात्र ! तुम इसके भी पात्र हो . मेरी तुम्हारी प्रीति की सचाई और दृढ़ता का ब्यौरा तुमही करोगे . यहाँ कोई निर्णय करने वाला नहीं,

यह मेरी प्रथम गद्यरचना है, क्या इसे अंगीकार न करोगे ? तुम्हारा "मोती मंगल" और यह मेरा "श्यामास्वप्न" हम दोनों के जीवनचरित की सरिताकल्लोल का चक्रवाक-मिथुन या हंस का जोड़ा आजीवान्त कलोल करैगा . जिसके सरस तीर के निकुंजमंडप पर 'श्यामालता' सदा लहलहाती रहैगी—जिस कुंज के 'प्रेमसंपत्ति' और 'श्यामासरोजिनी' रूपी विहंगम सदा चहक चहक कर 'श्यामालता' की शोभा बढ़ावैंगे—'श्यामसुंदर' चातक सदा प्यासे ही बन कर 'पीपी'

रटेंगे-'मकरंद' कोकिल सदा हितके मीठे बोल बोलेंगे-और दुर्जन द्विरेफ दारण झंकार के मचाने में कभी न चूकेंगे—यह अपूर्व सरिता की धारा कभी न रुकैगी—अंत को प्रेमब्रह्म के कमंडलु में समा कर हम दोनों को दैहिक दु.ख और संसार के बंधन से मुक्त करैगी, अब दिन आ रहे हैं . ज्ञान का दीप भ्रमतिमिर को नाश करैगा और प्रतिदिन मार्ग सुगम होता जायगा चिता नहीं, इस संसार में तुम्हैं छोड और कोई मेरा सर्वस्व नही—तुम्हारा ही कहा करता हूँ

"मिल्यौ न जगत् सहाय विरह चौरासी भटक्यौ"

तुम्हारे अद्वितीय पिता सरयूपारप्रदीप कविराजराजिमुकुटों के अलङ्कार के हीरे और मेरे गुरु श्रीपंडित गयादत्तमणि वैय्याकरण शेषावतार के चरणारविंद की दया जैसी मेरे पर रही तुम्हैं भलीभांति ज्ञात है . तुम कविशिरोमणि हो . इसको बांच के शोधन कर देना—और शुद्धभाव से इसे एक अपने जन की रचना जान और उनकी आन से अंगीकार कर लेना—बस

रायपुर, छत्तीसगढ़
२५ दिसबर १८८५
मध्यदेश.

केवल तुम्हारा,
जगन्मोहन सिंह.

श्यामास्वप्न

प्रथम याम का स्वप्न

सोवत सरोज मुखी सपने मिलीरी मोहि
तारापति तारन समेत छिति छायो री।
मंडप बितान लता पातिन को तान तान
चातक चकोर मोर रोरहु मचायो री॥
कंजकर कोमल पकरि जगमोहन जू
अधर गुलाब चूमि मधुप लुभायो री।
चूकत सो बैरिन कहा से खुली धों आँखि
हाय प्रान प्यारो हाय कंठ ना लगायो री॥

आज मोर यदि तमचोर के रोर से, जो निकट की खोर ही में जोर से सोर किया, नीद न खुल जाती तो न जाने क्या क्या वस्तु देखने में आती. इतने ही में किसी महात्मा ने ऐसी परभाती गाई कि फिर वह आकाश सम्पत्ति हाथ न आई! वाहरे ईश्वर! तेरे सरीखा जंजालिया कोई जालिया भी न निकलेगा. तेरे रूप और गुण दोनों वर्णन के बाहर हैं! आज क्या क्या तमाशे दिखलाए, यह (सोचना) तो व्यर्थ था क्योंकि प्रतिदिन इस संसार में तू तमाशा दिखलाता ही है. कोई निराशा में सिर पीट रहा है, कोई जीवाशा में भूला है, कोई मिथ्याशा ही कर रहा है, कोई किसी के नैन के सैन का प्यासा है, और जल विहीन दीन मीन के सदृश तलफ रहा है—बस. इन सब बातों का

क्या प्रयोजन ! जो कहना है आरंभ करता हूँ—आज का स्वप्न ऐसा विचित्र है कि यदि उसका चित्र लिख लिया जाय तो भी भला लगै. कल्ह संध्या को ऐसी बदली छाई कि मेरे सिर में पीडा आई. जो कुछ बन पडा ब्यालू करके लंबी तान अपने बिछौनों में जा अडा. लेटते देर न हुई कि नींद ने चपेट ही लिया. पहले तो ऐसा सुख लगा कि दुःख ही भगा. शीत की रात—अच्छे गरम और नरम बिछौने सोने के लिए—"जाडा जाय रुई कि दुई"—इसी पुरानी कहावत को स्मरण कर नींद का सुख अनुभव किया. पलकैं झपने लगीं—अधखुली होकर बंद हो गईं. कुछ काल तक स्मृति रही, जब तक स्मृति रही अपने कृत्य को शोचा, और फिर कुछ काल तक जगत का हाल बेहाल विचारते रहे—अब नहीं जानते क्या हुए—कहां गए. स्मृति कहां बिलानी—जी में क्या समानी, पानी कि पौन—ईंट या पत्थर—मौन रहना पडा. जिधर देखा केवल शैल पर्वत ही देखे. मन में चिरकाल से ध्यान था कि यदि ईश्वर ज्ञान दे तो तन में से म्यान से तरवार की नाईं भ्रम को निकाल अनन्य भाव से किसी पावन बिजन बन में धूनी लगा कर प्यारी श्यामा के नाम की माला डारैं—जीवन भी हारैं—तन मन धन सब वारैं—वरन उस"मनोरथ मंदिर की नवीन मूर्त्ति" के चरण कमल युगलों पर सुमन समर्पण करते करते अपने शेष दिन बितावैं. गतागत इसी जोर में नींद की डोर ने मुझे फांस कर गांस लिया. गांसना क्या साक्षात् निद्राप्रियता ने मुझे गाढालिंगन करके अपनी जुगल बाहुलतिकाओं से फाँस अंक में अंकही की भांति लगा लिया. बस, देखता क्या हूँ कि मैं एक अपूर्व मनोहर भूमि पर बिचरता हूँ, आमने सामने पर्वत, उत्तर भाग में एक बडी भारी नदी, कमल फूले हैं, कोकनद की पांती शोक को हटाती है. कुमुद भी एक ओर मुदयुक्त होकर निरख रहे हैं. इधर चातक पी पी रट रट कर अपने पुराने पातक का प्रायश्चित्त करता है. उधर काली कोयल भी अमराइयों में पंचम सुर से गा रही है.

आम की मंजरी सभों को सकाम करती है . वक्र और अधखुले पलास अपने पलासों के गर्व में टेढ़े हो रहे हैं . मालती की लता-चमेली-पाटल-चंपा-इत्यादि सब के सब अपने-अपने राव चाव में मगन हो रहे हैं—पर्वत की अनूपम शोभा कही नहीं जाती . सरिता उसी की नव वधू सी हो उसकी गोद से निकलकर और भी प्रमोद को बढ़ाती है . पर्वत की कंदरा सिंह के नाद से प्रतिध्वनित हो रही है—इधर उस नाद को सुन गवय और गज भी भीत होकर पलीत के (की) भांति चिक्कार मार कर भागते हैं—हरिन अप प्यारी हरिणी के साथ—[हा, हरिणनयनि !] कूदते जाते हैं—मयूरों के जूथ का वरूथ उड़ा जाता है—बादल छा गए—चंद्रमा छिप गए—पर बीच-बीच में उधर जाने से कभी-कभी प्रकाश भी करते हैं—

कबहुँ जामिनी होत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात.
मन न फुरत तंत्र नहिं लागत प्रीति सिरानी जात—

यह सूरदास का भजन स्मरण होता है इस प्रकार क्षण भर हेमंत में भी पावस का समाज हो गया था पर अंत को अकाल ही के मेघ तो थे क्षण में मवात से विधुर गए आकाश खुल गया .

यह हेमंत का समय था, गुलाब से करवाली उषाने चित्रोत्पला के उर से अंधकार के भेव दूर किये और उदय होते हुये भानु की किरणों का प्रतिबिंब लहरों में लहराने लगा . इस पुराने ग्राम के एक ओर नदी के नीर से पलास, आम, ताल, और खजूर के महावन पर्वत प्रचुर शालि की भीत अपने सुनहले सिर कपाती थी—दूसरे (री) ओर संपन्न गोचारण भूमि चतुरांग के गाय गोरुओं से आच्छादित थी . परंतु जब सूर्य्य का प्रकाश ऐसे मनोहर दृश्य पर ग्राम, मंदिर, और महलों पर फैला उस डायन के मुहँहरे का कारागार अंधेरा ही रहा . उस भयानक स्थान के इ तभागे बंदियों में से एक युवा को छोड़ जो विद्यार्थी के रूप में था

किसी ने अपनी एकांत कोठरी की खिड़की पर दृष्टि नहीं डाली . इस मुहर्रे के एक कोने में प्यार पर बैठा प्रथम किरण की आशा लगाये पहरा दे रहा था छ दीर्घ मास उसी निर्जन कोठरी में सिसक सिसक के बिताये, समय बीता परंतु प्रत्येक दिवस और घटों के साथ जो दु ख के बोझ के मारे मद मद पग धरते थे सब, नित्य आशा का अंत हुआ, उसकी सब उमगों को उस बंदीगृह समुद्र से निकलने के लिये मोक्ष की कोई नौका न दिखी . हाँ—छ महीने इसी आशा से उस नरक में काटे कि कभी तो कोई न्यायाधीश न्याय करेगा बहुतेरा रोया गाया प्रार्थना की, पर सब व्यर्थ. उस आधी रात सी लोह की अंधियारी में भी अपने विक्षिप्त चित्त पर परदा डालने के लिये नेत्र मूँद लेता तो भी वे मनोरथ हजारों भाँति के भयानक रूप देखते थे कि उसने अपने (नी) कोठरी के अंधकार से डर कर प्रकाश देखने की इच्छा की. इस युवा का अपराध क्या था ? इसने प्रेम किया था यद्यपि प्रेम करता था एक उत्तम कुल की स्त्री—इसको यह मोह और उन्मत्तता से प्रेम करता था आह प्यारी तेरी मूर्ति भी इस कारागार के अंधकार में कभी कभी मुस किरा जाती है—उस तारा की भाँति जो मेघ के बीच में चमक कर समुद्र के कोप में पडे हुये निराश मल्लाहों को प्रसन्न करती है

हा, तुझ पर वह अत्यंत प्रेम रखता था, ऐसे चाव से चाहता था . जहाँ तक मनुष्य की शक्ति है—क्या तेरा कोमल जी उसके उत्तर में न धड़कता होगा ?

पहिले शूद्रों के राजों, लोगों, और न्यायकारियों के (की) दृष्टि में अपने से ऊँची जाति का आकांक्षी और विशेष कर ब्राह्मणियों पर नेत्र लगाने वाला पापी और हत्यारा गिना जाता था—वह कैसा ही सत्पुरुष और ऊँचे कुल का न हो ब्राह्मण की कन्या से विवाह करना घोर नरक में पड़ना या अग्नि के मुख में जलना था . मनु के समय में ब्राह्मणों की कैसी उन्नति और अनाथ शूद्रों की कैसी दुर्दशा थी नीचे लिखे हुए

श्लोकों से प्रकट होगी . एक तो आकाश और दूसरा पातालवत् था . एक तो दूध दूसरा पानी,—एक तो सोना दूसरा पीतल—एक तो स्वतंत्र दूसरा कैसा परतंत्र और आजीवान्त सभों का दास, एक तो पारस दूसरा पाषाण—एक तो आम, दूसरा बबूर—एक तो सजीव दूसरा जड, निर्जीव, केवल वृक्ष की भांति उगने, फूलने, फलने और मुरझाने के लिये था . वाहरे समय ! ब्राह्मणों ही के कर में कलम था मनमाना जो आया लिख दिया राजाओं पर ऐसा बल रखते थे कि वे इनके मोम की नाक थे, या काष्ट पुत्तलिका जिसकी डोर उनके हाथ में थी—

> शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन् ॥
> अगुप्तमङ्गं सर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥ ३७४।८

अर्थ। यदि शूद्र किसी द्विज की स्त्री से गमन करैगा चाहे वह गृह में रक्षित हो वा अरक्षित इस प्रकार दण्डय होगा—यदि अरक्षित हो तो उसका वह अंग काट डाला जायगा और धन भी सब ले लिया जायगा—यदि रक्षित हो तो वह सब से हीन कर दिया जायगा .

> उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्या गुप्तया सह ॥
> विप्लुतौ शूद्रवद्दाण्डयौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना ॥३७७ ८

यदि वे दोनों (वैश्य और शूद्र) ब्राह्मणी-गमन करैं जो रक्षिता है तो शूद्रवत् दंड होगा वा सूखे भुसे के (की) आग में जला दिया जायगा—

> मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ॥
> इतरेषान्तु वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥३७९।८
> न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ॥
> राष्ट्रादेनम्बहिष्कुर्य्यात्समग्रधनमक्षतम् ॥३८०।८ ,
> न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि ॥
> तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत् ॥३८१।८

अर्थात्—"ब्राह्मण का मूड मुड़वा देना यही दण्ड वध के तुल्य है पर और दूसरे वर्णों का वध केवल प्राण ही लेने से होता है" वाह अच्छा वध है—ब्राह्मणों का अभ्यास तो नित्य ही मूड़ मुड़ाने का है—कैसो गंगा के तीर पर हजारों मुंडी बैठे रहते हैं और नाऊ लोग रोज ही उनको मूड़ते हैं.

चाहे कैसहू पाप न किया हो ब्राह्मण को कभी नहीं मारना पर सब धन को बचाकर (अक्षत) केवल राज से बाहर कर देना चाहिए.

संसार में ब्राह्मण वध से बढ़ कर और कोई अधर्म नहीं है इसलिए इसका वध राजा मन से भी न विचारे—

> एतदेव व्रत कृत्स्नं षण्मासान् शूद्रहाचरेत् ॥
> वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः ॥१३०॥११
> मार्जारनकुलौ हत्वा चाष मण्डूकमेव च ॥
> श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥१३१॥११
> ब्रह्महा द्वादशसमाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् ॥
> भैक्षाश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् ॥७२॥११

शूद्र को मारने वाला छः मास (७३-८१) या तो उक्त व्रत करै अथवा ११ बैल या ११ श्वेत गैया ब्राह्मण को दे—१३०

फिर बिल्ली नेवरा इत्यादि के मारने का प्रायश्चित शूद्रवत् है—तो शूद्र बिल्ली के तुल्य हुआ इस विचार सा जीव बड़ा सस्ता था परन्तु ब्राह्मण को मारकर १२ वर्ष कुटी बनाकर वन में बसे और उसके मुर्दे के (की) खपरोही में अपनी शुद्धि के लिये भीख मांगे. इससे ब्राह्मणों का कितना मान था जाना जायगा.

उसकी प्यारी के पिता के कारण वह बंदीगृह में पड़ा था यद्यपि कृत्रिम दोषों का आरोप भी न था. ऐसे ऐसे बलात्कार प्राचीन समय में

जब कि छोटे छोटे भी राजों को अमित अधिकार था होते थे और उसी अंधाधुंदी में न्याय होने में विलंब हुआ .

इस हेतु इस निराशित सत्कुलोत्पन्न और सभ्य युवा के हृदय में उन प्रभुओं से बदला लेने की उमंगें उठा करतीं, उसके दुःख और वेदना ऐसी प्रबल थी कि उसी उमंग में वह यह कह उठता क्या कोई शक्ति आकाश की वा पाताल की मेरा विनय नहीं सुनती ? क्या मुझे त्राण न करेंगी ? क्या मैं अपनी प्रिया के प्रेम और बदला लेने की आशा तज दूँ ? नहीं नहीं यदि मुझे क्षण भर भी कोई वैर भंजाने का अवकाश दे तो मैं वैकुंठ और प्रेम दोनों दे दूं .

यह वाक्य उसने (वह) उसी पियांर पर बैठे बैठे सहस्रों बार कहता प्रकाश की आशा लगाए था कि मुइहरे के कारागार के फाटक का अर्गल किसी ने पीछे खींचा . लोहे की सांकर खनखनाती बाहर पत्थर के गच पर गिरी और द्वारपाल हाथ में दिया लिए आया .

प्रकाश उस चिन्ता कवलित युवा के मुख पर पड़ा जिसके भूरे बाल, काली आंख और विमल आनन उसके किसी सत्कुलीन क्षत्रिय होने के सूचित (सूचक) थे . "मुझसे क्या माँगते हो" युवा अपने कटासन से युगपत् चिहुकता हुआ पूरा खड़ा होकर बोला "यह तो मेरे रातिब (व) का समय नहीं है. सचमुच यह काम तो आप रात को करते हो . अब तो प्रातःकाल होता होगा, पर क्या आप यह कहने आए हो कि मैं (मेरा बंदीगृह से मोक्ष हुआ" युवा ने ये शब्द बड़ी जल्दी कहे और प्रसन्न होकर बोला "हाँ मेरे मोक्ष की आज्ञा त्याए हो तो कहो" इतन कह हाथ बांध खड़ा हो रहा .

जेलर ने कहा "युवक ! ऐसे स्थान में सुख समाचार सुनने की अपेक्षा दुःखदायक समाचार सुनने को सदा प्रस्तुत रहना चाहिए तो भी आज (समाचार

जेलर ने पूछा—"तो क्या तुमने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है ?' युवा ने कहा "हैं ! क्या उन्हे अपराध गिनते हो प्रकृति के अनुसार किसी को प्रेम करना जिस स्वभाव से बड़े बड़े अभिमानी मुनि भी नहीं छूटे हैं अपराध समझते हो ?"

जेलर ने कहा "प्रेम की दृष्टि से किसी ऐसी स्त्री को देखना जिसकी सगाई किसी महापुरुष से हो चुकी हो पाप है और इसका दंड केवल वध है" .

"वध !" अपने दिन निकट जान वह दु खी बोला "यह तो बड़ा भयानक है ऐसा नहीं हो सक्ता तुम स्वप्न देखते हो या तुम्हारी भ्राति है मनुष्यों का अन्याय और कुटिलता इस सीमा तक नहीं पहुँचती" .

"प्रबोधचद्रोदय या कपटनाग से बलिए शत्रु हों तो ऐसा होना कुछ आश्चर्य नहीं जिस दिन तुम इस कारागार में बैठे थे उसी दिन तुम्हारा अत हो चुका था" .

युवा ने कहा "तुम न्यायाधीश के चित्त को कैसे जान्ते हो तुम उसके एक चाकर हो वह ऐसे चित्त के विकारों को तुमसे कभी नहीं कहने का" .

जेलर ने कहा "मै इसे भुगत चुका हूँ और सच पूछो तो मै अभी तक बदी हूँ मेरे प्राण केवल इसी प्रतिज्ञा पर बचे कि जन्म भर मैं जेलर रह अपने शेष दिन बिताऊँगा" युवा ने कहा "तुम्हारा अपराध क्या था ?" जेलर ने उत्तर दिया "इसको क्या पूछते हो पर पहिये के नीचे पिसकर मरना यही मुझपर दण्ड हुआ था" .

"तो इस प्रकार दासत्व छोड़कर बचने का क्या और कोई उपाय न था ?' जेलर ने कहा "कुछ नहीं, पर ठहरो एक बात भूल गया था एक बड़ा पाप इससे भी बढ़कर था उस पर प्राय आरूढ हो चुका था किंतु

मेरे भले स्वभाव ने मुझे बचाया . इसी भाँति दास बनकर अपने दिन बिताना अच्छा पर उस पाप को करके यदि इन्द्र या कुबेर हो जाऊँ तौ भी निषिद्ध है" .

युवा काँप कर बोला—"क्या वह ऐसा भयानक था?" जेलर ने उत्तर दिया "बस मुझसे मत कहलाव" इतना कह वह ऐसा ऐंठा और डरा मानों इसके भीतर कोई भूत या यमदूत हो . युवा ने प्रार्थना की "दया कर इसे बताने का वरदान तो अवश्य दीजिये मेरा चित्त इसके सुन्ने को बडा व्यग्र और चिंताकुल हो रहा है देखो यह मेरी थैली है और उसकी (का) द्रव्य सब तुम्हारी (तुम्हारा) है . मैं तुझे देता हूँ कदाचित् इससे तुम्हारा कोई काम निकले पर मेरा तो कुछ भी नहीं" .

जेलर थैली को पंजों में पकडकर बोला "इस सुवर्ण के लिये अनेक धन्यवाद है यह एक ऐसी बात है कि जिससे मेरी नाड़ी शिथिल और अति संकुचित हो जाती तो भी सुनो यह बात प्रसिद्ध है पर केवल इसी कारागार के भीतों के भीतर ही. डेढ़ से बरस पहिले एक विद्वान् जिसके रात दिन उस गुप्त महा-विद्या के रहस्य ढूंढने में बीते थे इसी बंदीगृह का बंदी हुआ . वह तंत्र में ऐसा निपुण था और ऐसे ऐसे मंत्र जंत्र जानता था कि प्रेत, पिशाच, भूत, बेताल, डाकिनी, शाकिनी, योगिनी सब उसके वशीभूत हो गई थी. मेरी भाति उसको भी पहिये के नीचे दब कर वध का दण्ड हुआ था परंतु केवल इसी विद्या के बल से बच गया क्योंकि उसने एक मंत्र पढ़कर नरक के एक पिशाच को सिद्ध किया और केवल स्वतंत्रता, धन, पौरुष, अधिकार और दीर्घायु के हेतु अपना तन, आत्मा, और स्वयम् आप उसके हाथ बिक गया . वह मंत्र जो इसने सिद्ध किया था अद्यावधि इसी भीत पर गहरा खुदा है लोग कहते हैं कि यह उसी के हाथ का खोदा है और इसके मिटाने में मनुष्य जाति मात्र का परिश्रम व्यर्थ है . बस यही बात थी और अभी तक जो चाहे इतना बलिदान देकर सिद्ध कर

ले ." ऐसा कहते जेलर सिर से पैर तक कंपता हाथ मे दिया को उस ओर उठाया जिस भीत के मूल में इस युवा की सेज थी और बोला "भाई बचाना देखो यह मंत्र अभी तक लिखा है" युवा ने नेत्र उठाकर देखा पर जेलर ने डरकर कहा "नहीं भाई इसे पढ़ना मत नहीं तो इसके वाचते ही यह प्रेत अपनी भयावनी मूर्ति ले आ खड़ा होगा क्यों कि यह आकर्षण मंत्र है !".

इतना कह जेलर ने दीप हटा लिया और आप भी कुछ हटा; बोला "ले भाई अब मैं जाता हूं कोई आध घंटे के बीच में राजदूत आ पहुँचेंगे" इतना कह जेलर दीप को ले चला गया और वह विचारा युवा फिर भी अंधकार में डूब गया .

एक बार फिर यह अकेला हुआ और बोला "उसने अच्छा किया जो इस पर ध्यान नहीं दिया ईश्वर मुझे भी इस लोभ और मोह से बचावे— पर हा प्यारी ! प्राणप्यारी क्या तू जानती है कि मैं तेरे लिये यह सब न करूँगा ? देख इस आधी घड़ी में मेरा चित्त कैसा बदल गया इस भयदायक कथा को जो मेरे कान में घंटे की भाँति बजती और जिसकी झांई मेरे हृदय में बोलती है, न सुनता तो अच्छा होता, मेरे चित्तमें कैसे कैसे संकल्प उठते हैं . वो मुझ को ऐसे भयानक कर्म करना सिखाते हैं कि जिनके निमित्त अंत में निरंतर नरक की अग्नि में वास करना पड़ेगा . हा प्रिये ! तुझे छाती से लगाना, तेरी अमृत मई वाणी सुनना, तेरी दया दृष्टि की छाया में विश्राम करना और तेरे धड़कते हुए हृदय को देखना मेरे लिये वैकुंठ था—पर देख इस अभिमानी कपटनाग और न्यायाधीश से वैर भंजाना जिसने विचार के पूर्व ही यहाँ डाला—यह वैर लेना जो केवल तेरे प्रेम ही से घटकर है यह अविचल प्रेम और वह वैर जो तेरे पिता से लेना है यह भी मेरे लिये वैकुंठ है—हां प्यारी केवल तेरी प्रीति के लिये मैं वैकुंठ को भी कुंठ समझता हूँ और वैर भंजाने के लिये नरक का निरंतर वास भी स्वीकार करता हूँ",

इसी समय द्वार खुल गया और एक अधिकारी हाथ में दीप लिये आ गया .

उसने कहा 'हे युवा मैं तुझको प्रधान न्यायाधीश के सम्मुख ले जाने आया हूँ, वे थोडे काल में अभी धर्मासन पर बैठेंगे "

जैसे तिजारी आवे इस युवा का वदन कपने लगा बोला "एक क्षणभर ठहरिये और मुझे अपने अतकाल की दशा सोचने को तीन काष्टा का अवकाश दीजिए ".

अधिकारी ने कहा "जिसे बहुत घटे नहीं जीना है उसकी प्रार्थना कभी नहीं टालूगा ' इतना कह उसने प्रकाश वहीं धर दिया और चला गया युवा फिर एकात में विचारने लगा "जिसे बहुत घटे नही जीना है ! फिर मेरा भाग्य निश्चय ऐसे ही होगा जेलर ने ठीक कहा था" इस समय फिर भी उसको उसी प्रेत का स्मरण आया और कई बार घृणा की

वह अधिकारी फिर आया और बोला "समय तो हो गया चलो चलें" युवा ने विषादपूर्वक प्रार्थना की "भाइ दो पल और ठहर देरा हाथ जोडता हूँ—दो पल कुछ बडा समय, नही है, चुटकी मारते जाता है . मुझे केवल भ्रमती हुई मनोवृत्ति को एकत्र करने दे " उसने कहा "मै तेरे लिये अपने को न्यायाधीश के क्रोधाग्नि में डालता हूँ इधर तेरी भी प्रार्थना टाल नहीं सक्ता" इतना कह वह अधिकारी फिर चला गया इतने में सूर्य की किर्नें बडे कष्ट से भीतर आई वह युवा उन्मत्त की भाति इधर उधर चलता हुवा सोचने लगा "हाय ! नहीं नहीं मै इस यौवन में कसे प्राण दूँ और सब प्रिय पदार्थ कैसे पीछे छोड जाऊँ—प्यारी हम लोग फिर मिलेंगे और अपने प्रेम का कोष तेरे चरणारविंदों की भेंट दूगा तेरे पिता और दुष्ट न्यायाधीश से अपना वैर भजा लूगा—मेरे भाग्य में यही लिखा है "मेटन हितु सामर्थ को लिये भाल के अक"—हा हा मै केवल तेरे प्रेम और वैर लेने को अभी जीऊँगा "

ऐसा कह उसने दीप उठाया और उस मंत्र की ओर चला. फिर भी सोचा—दास होने से मरना भला. क्या तीन पल बीत गये ? देखो पैर का शब्द सुनाता है, जो हो फिर भी कदाचित् वह पलभर और ठहरे—हाय ! मैं कैसे मरू' मेरे तो अभी केवल २२ बसंत बीते हैं. उसका शरीर थरथराने लगा और मेधा चकरी हो गई अंत में उसने सब मनोरथों को एकत्र कर अपने नेत्र उस मंत्र की ओर फेंके उसने कहा बस अब एक बार कष्ट कर पढ़लो और क्षणभर में सब कुछ ओर का और हो जायगा मरक में तो जाना ही है.

इतना कह दीप को मंत्र के सामने उठा बड़ी शीघ्रता से यह मंत्र पढ़ा—

"ओम् अं गं भं शं मं क्र' पं गिं भां सूं कृपात्मजां श्यां श्यामा श्यामसुंदरी जं जगत्पालिनी मं मनोमोहिनी सिं सिंहाधिरोहिणी अं रां भुजलतावकराठीं लं क्षां मां अमुकीमाकर्षय अमुकी माकर्षयस्वाहा"

जिस समय यह उसके ओठें (ओठों) के बाहर हुआ एक मनुष्य का आकार सन्मुख खड़ा हो गया.

यह आकार कुछ भी भयानक न था वरन् शोचग्रस्त और चिंताकुल सा कुछ जान पड़ा, मानो कोई आग उसके चित्त को निरंतर दहन करती हो. किंतु उसके चारों ओर ऐसा प्रकाश हुआ कि कारागार का अंधकार बिला गया. यह पुरुष का नहीं पर स्त्री का आकार था. यह डाइन थी. वह तो साक्षात् भगवती भगमालिनी का रूप है—चंडा मुंडा करालिनी. देखते नहीं उसके बड़े बड़े दांत किसको चर्वण न कर डालेंगे—"चर्वयस्यतिभैरवम्" रौरवंभी. उसके दंष्ट्राकराल के गोचर अनेक महापुरुष होकर कौर कर लिए गए. कुछ स्तुति तो करो "भगवति ! चंडि ! प्रेते ! प्रेतविमाने ! लसत्प्रेते ! प्रेतास्थिरौद्ररूपे ! प्रेताशिनि ! भैरवि ! नमस्ते !"

इतना कहते देर न हुई कि बस.

"काली करालवदना विनिष्क्रान्ताऽसिपाशिनी
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्ना रक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा
सा वेगेनाभिपतिता घातयंती महासुरान् ॥"

इस प्रकार से और इस भांति भगवती डाकिनी शाकिनी उपस्थित हुई, बँबई की किनारदार धोती पहने, मनुष्य का कपाल हाथ में, गदर-माला फटकारते, लंक लौं लटकती लंबी लटैं—लाल लाल नेत्र, अंतराल को सिर में लपेटे—नरास्थि की पुंगरी फूकती—बड़ी बड़ी लम्बी टांगें फेकती दो सुंदरी एक ओर ब्याही और एक ओर कुमारी कन्या को कांख में खोंसें थीं .

देवी ने कहा "मुझसे क्या चाहते हो ?" युवा बोला—"बचा, बचा, मुझे इस घोर कारागार से निकाल दे"—देवी बोली "मैं तुझे निकालूँगी" और उसका हाथ पकड़ आकाश की ओर उड़ गई—वह युवा तो बेसुध हो गया . प्रात-काल को जब जगा तो क्या देखता है कि अपनी पुरानी प्यारी सेज जो कविता कुटीर में थी उसी पर सोया है . आँख खोली और उसी प्राचीन ग्राम की गली देखी और जब उसके नेत्र उस कुटीर के (की) ओर पड़े तो उस कारागार के दु:खद पाषाणों के स्थान के (की)प्रतिनिधि अपनी वस्तु देखी एक टेबल् पर कहीं कलम, कहीं स्याही, कहीं श्यामालता—कहीं साख्य, कहीं योग—कहीं देवयानी के नूतन रचित पत्र इत्यादि पड़े हैं . बड़ा आनद हुआ और युवा के नेत्र सजल हो आये, बोला "यह बड़ा भयानक स्वप्न देखा था ऐसा जान पड़ा कि मैं किसी

सुनाऊँगा वह भी मेरे लिये क्या चार आँसू न गिरावेगी ? तो बस अब उसी के पास चलूँ"—

ऐसा सोचता हुआ वह अपनी मेज पर ज्योंही पौंढ़ा डाइन आ गई और वह इसको फिर देख हक्का बक्का हो गया, कहने लगा "नहीं, नहीं, यह स्वप्न नहीं प्रत्यक्ष है" इसी को फिर फिर कहता रहा डाइन बोली "यह प्रत्यक्ष है क्या तू भूल गया . इस प्रत्यक्ष के प्रत्येक अक्षर ऐसे सत्य है जैसा कि वह सूर्य्य—इसमें तुझे अपना परलोक और भावी सुख सब मेरे हाथ बेच देना पड़ेगा पर अभी कुछ बिलंब नहीं यदि चाहो तो छूट सक्ते हो पर फिर उसी कारागार में जाना होगा . अब तेरे होनहार सब तेरे ही हाथ में है जो चाहे कर"

कमलाकांत बोला, "तो अच्छा तू जा मैं तेरी सहायता नहीं चाहता. तेरे हाथ परलोक और सुख कभी देने का नहीं" .

डाइन ने उत्तर दिया—' जो ऐसा ही है तो जाती हूँ पर एक बात और सुन—यदि तू मुझे छोड़ता है तो फिर उसी भुइहरे में जाना होगा—वहां से फिर उसी न्यायाधीश के पास वहाँ से फिर सूली पर जाने का मार्ग खुला ही है". कमलाकांत ने कहा "कुछ चिंता नहीं मुझे तुझसे बढ़के और कहीं पवित्र शक्ति पर जिसका प्रभाव सब जानते हैं बड़ा भरोसा है. यदि तू छोड़ देगी तो वह (आकाश की ओर दिखाकर) तो नहीं छोड़ेगा—

"है सबसे समरथ्थ बडो प्रभु मारन हारे तें राखनहारो"

जा—जो चाहे कर"

डाइन व्यंगपूर्वक मुसकिराकर बोली "अरे तुच्छ मूर्ख—जड़-यह तेरी प्यारी जो इतने बड़े की बेटी है तुझे मिली जाती है क्या ! कहाँ तू और कहाँ वह ? "कहाँ राजा भोज और कहाँ भुजवा तेली" , कहाँ सूर्य्य और कहाँ काँच, और फिर वह डेढ़ वर्ष तक क्या तेरे लिए बैठी है ?

वह नहीं जानती कि तू इस कारागार में है, उसे केवल तेरा विदेशगमन ही ज्ञात है और फिर मनुष्य इतने दिनों तक सत्यप्रेम नहीं निवाहता"

कमलाकांत ने कहा "यदि तुझमें शक्ति हो तो बुला दे तब मैं मानूँगा बुलाने की शक्ति ही नहीं तो व्यर्थ क्यों बकती है". डाइन बोली ' तो मैं इसका प्रमाण क्यों दूँ जब तुम विश्वास ही नहीं करते" .

कमलाकांत ने कहा "सुन, यदि तू इसका प्रमाण दे कि वह पक्की नहीं तो मैं सर्वत तेरा हो जाऊँ ' डाइन ने कहा' हाथ मार, देख—फिर न बदलना मैं दिखाती हूँ '

युवा ने हाथ मारा और डाइन खिरकी की ओर अपना दाहिना हाथ पसार के यों कहने लगी—

"चल बे चल अब ल्याव बुलाय
जो यह मंत्र फुरै मम आय
जो कुछ शक्ति होय गुरु दीह
जौं सेवा वाकी मैं कीह
तो आवे वह सेन समेत
अथवा जैसे होय अचेत।"

'छू छू छू दुहाई वीर भैरों की, आव आव आव दौड—धौड, छू छू छू."

इतने में एक मेघ घुमड़ आया और खिड़की को ढाँक लिया, घर के भीतर मेघ घुस आया—मैंने प्रार्थना की और कहा—

"सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः
संदेशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थित हरशिरश्चन्द्रिकाधौत हर्म्या" ॥

इसके पढ़ते ही सब तिमिर में समा गया, सृष्टि के नूतन विधान का निशान फहराने लगा, ' भयौ यथाचित सब संसारू" नील अंबर में

भगवान् विभावरीनायक अपनी सोलहो कला से उदय हुए, दुर्जन के सदृश अंधकार का आकार ही लोप हो गया. स्वच्छता का बिछौना चाँदनी ने महीतल में बिछाया. कौमुदी ने चाँदनी तानी. उस समय की शोभा कौन कह सकता है.

"चञ्चचन्द्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलित तारका ॥
अहो रागवती संध्या जहाति स्वयमम्बरम् ॥"

औषधियों के नायक ने सब औषधियों को अपने कर से सुधा सींच कर फिर जिलाया. कुमुदिनी प्रमुदित होकर अपने प्रियतम को सहस्र नेत्रों से देखने लगी. सौत नलिनी ने आँख बंद कर ली. परकीया कहीं स्वकीया की बराबरी कर सक्ती है. चंद्रमा से जगन्मोहन गुण की अभिरामता क्या सूर्य के तेज में है. इसी से चंद्रमा का नाम लोकानंदकर प्रसिद्ध (है). कोकनद से सेवक अपने नायक के (की) वृद्धि पर हर्षित हुए. वन की लता पता पर प्रकाश क्रम से फैलने लगा. समभूमि से, वन—वन से उपवन-उपवन से द्रुम-द्रुम से पादप-पादप से वृक्ष-वृक्ष से गुल्म लता-वल्ली आदि को आक्रमण करके महीधरकी मेखला—मेखलासे शैल—शैल से पर्वत—पर्वतसे शिखर—शिखर से तुंग पर अपना सुयश फैलाकर फिर अपनी कीर्ति कहने के लिए स्वर्गगा मंदाकिनी में अवगाहन कर गोलोक—गोलोक से विष्णुलोक-विष्णुलोक से महलोक, वहाँ से चंद्रलोक को फिर लौट गया. मृत्युलोक में मानो एक वितान सा तान दिया हो. प्रथम तो सागर के किनारे से निकला. सागर की द्वितीय बड़वानल के सदृश अपनी किरनों से तरल तरंगों में फँसकर क्रम से व्योम के किनारों को कुंदन से कलित किया. पर्वत के शिखर पर चाँदनी बिखर गई. पत्तों पर एक अपूर्व शोभा दिखाने लगी. मंद वायु से कंपित होकर पत्र भी यत्र तत्र अपनी परछांही फेंकने लगे. नदी के लोल लहरों में मिलकर सौ चंद्रमा पैठे से जान पड़ते थे—झरनों का झरना कैसा मनोहर लगता था, मानों मोती के गुच्छे पर्वत के ऊपर से छूट छूट कर गिरते हों.

झिल्ली की झनकार—भेक का एक-सा शब्द निशिचर विहंगमों का विहार मन को चुराये लेता था. संजोगियों को सुखद और वियोगियों को दुःखद जान पड़ता था; सजोगियों का निधुवन प्रसंग और वियोगियों के विरह का कुढंग अपनी आँखों से देख देख साक्षी भरता था. इधर सारसों का जोड़ा उधर चकवा चकई का बिछोड़ा संयोग और वियोग का उदाहरण दिखाता था. रात के कारण और सब पक्षी बसेरे में थे केवल उल्लू से बेराज के मनुष्य इधर उधर घूमते थे. इस समय देवजी का कहा याद पड़ा—

मंद मंद चढ़ि चल्यौ चैत निशि चंद चारु
मंद मंद चाँदनी पसारत लतन तैं॥
मंद मंद जमुना तरंगिन हिलौरै लेत
गुंजत मलिंद मंद मालती सुमन तैं॥
देव कवि मंद मंद सीतल समीर तीर
देखि छबि छीजत मनोज छन छन तैं॥
मंद मंद मुरली बजावत अधर धरैं
मंद मंद निकसो गुविंद वृंदावन तैं॥

और भी—

घटै बढ़ै बिरहिनि दुखदाई। ग्रसै राहु निज सधिहिं पाई॥
कोक शोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही॥

प्रकाश का पिंड धीरे धीरे मही मंडल में अपनी कीर्ति प्रकाश कराता है. बड़े सघन लतामंडप के भीतर भी पत्तों के छेदों से चाँदनी की किरणें प्रवेश करती हैं. मैंने इस शोभा का, प्यारी चैत की रातों में कभी प्यारी के सहित कभी प्यारी से रहित नदी तीर में भीर निकल जाने के पीछे कई बार अनुभव किया है. ऊपर चाँदनी का स्वच्छ, वितान, नीचे जल की चमक–इधर बालू की सुपेदी, उधर क्षितिज तक

इसका फैलाव–ऐसा जान पड़ता है मानो पृथ्वी और अम्बर एक-सा हो गया है . चंद्रमा का विंब जल की लोल तरंगों के भीतर ऐसा दिखलाई देता है मानो सहस्र नेत्रों से यह मूर्त्तिमान् हो मदन के साथ इस अपूर्व शोभा का अनुभव करता हो . जल जंतु भी ऐसे हर्षित होते हैं कि नक्र कुलीर सफरी इत्यादि उछल उछल कर इस शोभा पर अपने प्राण देते हैं . यह व्यौम का दृश्य भूलोकगत जनों को भी भाग्यवश दिखाई पड़ता है . पर हा ! क्या यह इस समय हमसे वियुक्त रहै—हाय ! "दुर्बले दैवघातकः" यह कहावत प्रसिद्ध है–दिशा कामिनियों का मुकुर–मदन के बाणों को चोखा करने की शान—भगवान् उमापति के ललाट का अलंकार—व्यौम सागर का एक हंस–तारागणों के मध्य में ऐसा सोहता था मानों दिक्कामिनी चंद्र प्रियतम पर पुष्पवृष्टि करतीं थीं—शंख, क्षीर, मृणाल, कर्पूरादिकों की प्रभा को लजाता समुद्र को आकर्षण करता–जीव मात्र—स्थावर जंगम को सुख देता और लोकों के पाप को नाश करता हुआ विराजमान है . संसार में जो लक्ष्मी मंदराचल में–प्रदोष के समय सागर में—जल सहित कमलवन में–वास करती है वही लक्ष्मी आज निशा के समय निशाकर में देख पड़ने लगी .

वाह रे चंद्र ! तेरी महिमा कौन लिख सक्ता है .

तू अपनी चंद्रिका के द्वारा इतने ऊँचे पर से भी बिचारी चकोरी की चोंच को सुधा से भर देता है—

तू अभिसारिकाओं का भी बड़ा मीत है—देख एक कवि ने कैसी कविता की है—

> "चतुर चलाक चित्त चपला सी चंदमुखी
> गिरिधरदास वास चंदन सी तन में ।
> सारी चाँद तारे की सुचद्दर चमकदार
> चोली, खुले खुभी, खास चंदकलदर में ,

चामीकर नूपुर चरन चम चम होत
चली चकवर पै मिलन चाव मन में—
तारन समेट तारापतिहि लपेट मानो
राकाराति चली जाति चाव से चमन में—"

तू समुद्र मंथन काल में समुद्र से निकला है यह पुराण की उक्ति ठीक जान पड़ती है—क्योंकि अभी तक तू उसी उदय पर्वत से बार बार निकला करता है .

तेरा बिंब मंडल अद्यापि अरुण है क्योंकि तूने इंद्र की नायिकाओं का यावक का अधर चूमा है . •

कहाँ तक तेरा प्रभाव गावें . जितना तेरे विषय में कहें वह थोड़ा उस शोभा को देखता ही था कि एक नवीन बाला गिरि के शिखर पर इस चंद्रमा को अपनी छवि से लजाती प्रकट हुई . इसकी सर क्या चंद्र कर सक्ता था ? नहीं, जैसे चंद्रजोत (महताव) के सामने दीप की कोई बात भी नहीं पूछता . सूर्य के सन्मुख खद्योत प्रकाश नहीं कर सकता वैसे ही इसके प्रभामंडल ने चंद्रमंडल को आक्रमण कर लिया . बाणभट्ट ने जो कादंबरी और महाश्वेता की प्रशंसा गुण रूप की की वह भी सब तुच्छ जान पड़ी . कालिदास ने जो कुमारसंभव में पार्वती की, वाल्मीकि ने जो सीता, मंदोदरी और तारा की बड़ाई की वह सब पीछे पड़ गई . श्रीहर्ष वर्णित नल की दमयंती, कालिदास कथित दुष्यत की शकुंतला, गौतम की अहल्या, ययाति की देवयानी, अज की इंदुमती, चंद्र की रोहिणी इत्यादि इसको देख इस समय सब लोप हो गई—इनका रूप और गुण सब केवल पुस्तकों में रह गया . अब छाया भी नही दिखाती . उसको देख मेरे हृदयमें यह श्लोक उठा—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्व बिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः ।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्या
या तत्रस्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातु: ॥

इतने से उसके सर्वांग का वर्णन संक्षेप हो गया तौ भी बिना कुछ कहे रहा नहीं जाता . इसलिए दो चार बातें और भी सुनो सर्वांगसुंदरी के रूप की कौन प्रशंसा कर सक्ता है ? उपमा कौन सी दी जाय ? जिसे सोचते हैं वही जूठी मिलती है .

"सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरिय बिदेह कुमारी ॥"
(तुलसी)

उसके घन अंजन से काले काले केश वेष की शोभा बढ़ाते थे . उसकी अलि अवलि सी घूंघरवारी अलकें मुखचंद्र के ऊपर ऐसी जान पड़ती थी मानों व्याल के छौंने अमृतपान करने की चेष्टा कर रहे हैं सुंदर सुभग ललाट द्विरद रद की स्वच्छता को लजाता था . बुद्धि और चतुराई का सूचक—मुनि के मन का भूपक—काव्य-कला का आलय—कुशलता का उदय—स्त्री चरित्र का केन्द्र—बुद्धि और विश्वास निर्माण करने का ध्रुव—ये सब बातें ललाट में लिखी सी ज्ञात होतीं थीं निशाकर सा आनन प्रभा का आकार—जिसे देखे रमा सागर में श्यामसुंदर के शरणागत हो वही शेषशायी के साथ रम रही . कमल भी जिसको देख जल में छिप गया . केशपुंज से आवृत उसका मुख जलद-पटल के बीच मयक की शोभा जीतता था अथवा मधुकरों की श्यामली अवली नवली नलिनी के चारों ओर गूँजती जान पड़ती थी . पंकज का गुण न चंद्रमा में और न चंद्रमा का पंकज में होता है—तौ भी इसका मुख दोनों की शोभा अनुभव करता था . काली काली भौंहें कमान सी लगतीं थीं . धनुष का काम न था . कामदेव ने इन्हें देखते ही अपने धनुष की चर्चा बिसरा दी . जब से इसे भगवान् शंकर ने भस्म कर दिया तब से यह और गरबीला हो इसी मिस इनगे धनुष का काम

लेता था—विलोचन इन्दीवर पै भ्रमरावली, मुख-मदनमंदिर के तोरन—रागसागर की लहरें—ऐसी उसकी दोनों भौंहें थीं . उसके नैनों की पल्कें, तरुणतर केतकी के दल के सदश दीर्घ किंचित् चटुल और किंचित् सालस शोभायमान थीं . नैनों की कौन कहे ये नैन ऐसे थे जिसमें नै न थी , जिन्हें देख हरिणी भी अपने पिछले पाँव के खुरों से खुजाने के मिस कहती थीं कि तुम अपने गर्व को छोड़ दो हृदयवास के आगार में बैठे मदन के दोनों झरोखे—रागसहित भी निर्वाण के पद को पहुँचाने वाले कान तक पहुँचने में अवरोध होने से अपने लाल कोयों के मिस कोप दिखाते—अ प जगत को धवल करते-फूले कमल कानों से गगन को सनाथ करते—सैकड़ों क्षीरसागरों को उगिलते—और कुंद और नीलोत्पलों की माला की लक्ष्मी को हँस रहे थे मानो मन के भाव के साक्षी होकर हृदयगार के द्वार पर अड़े हो

इसका सुंदर नाशावश मानों दशन रत्नों के तोलने का दंड अथवा नैन सागर का सेतुबध, अथवा जोबन और मन्मथ रूपी मत्त मतगजों का अगड़ है, मानो कदर्प ने अपनी कला कौशल्यता (कौशल) दिखाने के लिए धनुष भौंहों के कोनों में रूप के दोनों मीन बझा कर नाशादंड पर धर दिए हों अथवा पथिक कपोतों के फसाने के लिए भ्र सरासन पर घुन की गोली धरी हो .

अमी हलाहल मद भरे सेत श्याम रतनार ।
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत इकबार ॥ (बिहारी) (१)

उसके पके बिम्बोष्ट मुखचद्र की निकटता के हेतु सध्याराग से रंजित हैं . दशमणि की रक्षा के सिंदूर मुद्रा को अनुकरण करने वाले, हृदय के राग से मानो रंजित राग सागर विद्रुम के नवीन पल्लव से उसके अधर पल्लव थे .

---

१ यह दोहा बिहारी का नहीं रसलीन व अगदपण का है।

दशन की अवली लाल ओठों के बीच में ऐसी जान पड़ती थी मानो मानिक के पल्लव में हीरे बगरे हों, विद्रुम के बीच में जैसे मोती धरे हों, प्रवालों के बीच सुमन अथवा ललाम लाल लाल पल्लवों पर ओस के कनूके हों.

मुसकिराहट के साथ ही चाँदनी चाँद की मंद पड जाती थी. देखनेवालों की आँखें बिजुली की चकाचौंधी के सदृश झँप जातीं थीं. नव जोबन का एक यह भी समय है जब लोग भोली हँसी पर तन मन वार देते हैं अथवा उसके सन्मुख बैकुंठ का भी सुख कुंठ समझते हैं. उसकी कंबु या कपोत सी ग्रीवा मृणाल की नम्रता को भी लजाती थी, उसके दोनों स्कंध प्रेम और अनुराग सम्हारने को बनाए गए थे, उसके पीन कुच पर छूटे चिकुर ऐसे लगते थे मानो चंद्रमा से पीयूष ले के व्यालिनी गिरीश के शीस पर चढ़ाती है. मदन के मानो उलटे नगारे हों, मदन महीप के मंदिर के मानो दो हेम कलस, बेलफल से सुफल—ताल फल से रसीले—कनक के कंदुक—मनोज-बाल के खेलने की गेंदें—ऐसे अविरल जिन में कमल तंतु के रहने का भी अवकाश नहीं. गरमी में शीतल और शीत में उष्म ऐसे अग्नि के आगार जिसको हृदय में लगाते ही ठंडे पर दूर से दहन करने वाले—शरीर सागर के दो हंस—लावनिप पानी के चक्रवाक मिथुन – कमल की कली—मन मानिक के गह्वर—जिन पयोधरों को विश्वकर्मा ने अपने हाथों से खराद पर चढ़ा कर रचा था इस त्रिभुवन मोहिनी के तनतरु के मनोहर और मधुर फल थे. पतन के भय से मदन ने इनपर चूचुक के छल से मानो कीलें ठटा दी थीं. बस कहाँ तक कहूँ.

इनके नीचे नवयौवन के चढ़ने के हेतु मनोज की सीढ़ी सी त्रिबली की अवली शोभित थी. अमृतरस का कूप नाभी का रूप था.

उसकी कटि छटकिर छला सी हो गयी थी केहरी भी जिसे देख अपने घर की देहरी के बाहर कभी नहीं निकला, ऐसी सुकुमारी जो बार के

भार से भी लचती थी (१) ऐसी पतरी जो मुठी में भी आ जाती थी. कई तो उसे देख भ्रम में पडे थे कि लंक है या नहीं या केवल अंक ही का शंक है. नवजोबन नरेश के प्रवेश होते ही अग के सिपाहियों ने बडी लूट मार मचाई इसी भौंसे में सभों के हौसे रह गए किसी ने कुछ पाये किसी ने नितम्ब बिम्ब—पर यह न जान पडा कि बीच में कटि किसने लूट ली लंक के लूटने की शंका केवल कुच और नितम्बों की थी क्योंकि जोवन महीप ने जब इस द्वीप पर अमल किया तब डंका बजा कर क्रम से केवल ये ही बढ़े सुदर बर्तुलाकार जाघें कनकस्दली के खंभों की नाईं राजती थीं मानो किसी ने उलटे स्तभ लगा दिए हों. कलभ की शुंड भी गुड्डी मार कर उसके पेट तरे छिप जाती थी. कालिदास को भी कोई उपमा नहीं मिली, तभी तो उनने कहा है—

नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वात्
एकान्त शैत्यात्कदलीविशेषाः ।
लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं
जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः ॥

इसकी गति के अनुसारी राजहंस भी मानस सरोवर को उड गए, इसके चरणसरोरुह ऐसे शोभित थे मानो स्थलारविंद हों. नखों की छटा ऐसी थी मानो सूर्य की किरणों से पंकज खिला हो जहाँ जहाँ यह अपने चरनो को धरती ऐसा जान पडता कि ईंगुर बगर गया है. यह सर्वांगसुदरी नख से सिख तक एक साँचे कैसी ढरी चित्र की छवि सी प्रकट थी. अथवा किसी ने जैसे मणि की पुतरी बनाकर गौर उपलो के पर्वत पर धर दिया हो. केशो में जिसके विचित्र विचित्र सुमन खचित थे, माँग में मोती की लर, अलकों के अत में चमेली के फूल, जूड़े पर शीश-फूल के स्थान में गुलाब—

---

१ चलिहै क्यों चदमुखी कुचन के भार भये,
कचन के भार तो लचक लंक जाती है।

"काको मन बाँधत न यह जूडा बाँधनहार"

और चोटी के अंत में कदम्ब का फूल देखने वालो के हिए में कटारी सी हूल देकर करेजे में शूल उपजाता था . घन केशपाशोंपर दामनी दामनी सी छटा छहराती थी .

> "तमके विपिन में सरल पंथ सातुक को
> कैधौं नीलगिरि पै गंगा जू की धार है ।
> कैधौं बनवारी बीच राजत रजत रेख
> कैधौं चंद कीन्हो अंधकार को प्रहार है ।
> नापत सिंगार भूमि डोरी हंसरस कैधौं
> वलभद्र कीरत की लीक सुकुमार है ।
> पयकी है सार घनसार की असार मांग
> अमृत को आपगा उपाई करतार है ॥"

यह तो उसके माँग का हाल था .' उसकी वेसर की महिमा कौन विचारा कह सक्ता है , तौ भी इस प्रकार की कुछ शोभा थी .

> एहो मजराज एक कौतुक विलोको आज
> भानु के उदै में वृषभानु के महल पर ।
> बिनु जलधर बिनु पावस गगन धुनि
> चपला चमकै चारु घनसार थल पर ।
> श्रीपति सुजान मनमोहन मुनीसन को
> सोहै एक फूल चारु चचला अचल पर ।
> तामें एक कीर चोंच दाबे है नखत जुग
> शोभित है फूल श्याम लोभित कमल पर ॥

अथवा यह जान पड़ता था कि पृथ्वी की गोलछाया चंद्र पर पड़ी है . नाक का मोती ऊपर कजरारे लोचन के प्रतिबिंब से और नीचे प्रवाल अधरो की आभा से आधा श्याम और आधा लाल जान पड़ता है— यदि लाल गुजा की उपमा दी जाय तौ भी संगत हो . सादी सादी सूरत

भोली भाली भौंहें—मनुष्यों के हिए में मूरत सी गड़ गई थी, मुख निशाकर पर शीतला के छोटे छोटे बिंदु ऐसे जान पड़ते थे जैसे देव ने कहा है—

"भाग भरे आनन अनूप दाग सीतला के,
　　देव अनुराग फिया से झमकत है।
नजर निगोडिन की गड़ि गड़ि गाड़े परे,
　　आड़े करि पैन दीठ लोभ लपकत है॥
जोबन किसान मुख खेत रूप बीज बोयो,
　　बीज भरे बूँदन अमंद दमकत है।
वदन के बेंझे पै मदन कमनैती के,
　　छुटारे सर चोटन चटा से चमकत है॥"

चांदतारे का दुपट्टा पीत कौंषेय की सारी यद्यपि भारी थी तौ भी समय के अनुसार कुछ कुढंग नहीं लगती थी. आधा सिर खुला, दक्षिणी रीति के बसन पहिने, अति सुकुमार रति का रूप दूर से देख मेरे मुख से अकस्मात् यह निकल पड़ा कि यह "वनज्योत्स्ना" किस श्यामा का रूप है . मैने तो ऐसी मोहिनी मूरति कभी नहीं देखी थी . यद्यपि मेरी आयु अभी दो हजार आठ सौ वर्ष से अधिक न थी तौ भी यह मदन मोहिनी कीसी और पहले कोई ललना नहीं लखी थी. मेरी इच्छा हुई कि इसके चरण युगलों की यदि आज्ञा हो तो सेवा कुछ दिन करूँ. इसी सोच विचार में चार हजार बरस व्यतीत हो गये . अंत को जब आँख खुली तो फिर भी उसी मूरत का ध्यान, वही सामने खड़ी, वही आंखों में झूलने लगी. विमान तो आज्ञाकारी था मन में सोचते ही उसी की ओर मुड़ा निकट जाने से और भी चरित्र देखे . यह "मनोरथ-मंदिर की नवीन मूर्ति" नवनीत से कोमल सिंहासन पर बैठी है—इसकी तीन सखी निरंतर सहचरी होकर इसके सुख दुःख की भागिनी सी बनी

रहती है. ये दोनों ऐसी जान पड़ती थीं मानो इसकी भगिनी हों, क्योंकि बोल चाल मुख का बनाव अंग का ढाल—विमल मयंक सा आनन—वस्त्र और आभूषण सब तद्विषय के सूचक थे मुझे इनकी मुसक्यान बड़ी सुंदर लगी एक तो ११ और दूसरी ६ वर्ष की थी तीसरी इसकी सखी कुछ ऐसी रूपवती तो नहीं थी, पर हाँ—संगत की आंच लग ही जाती है—देह इसकी गोरी—मानों छोटे छावले की छोरी हो

गजराज सी चाल—गले में चमेली की माल—बड़ी चतुर पर मदनातुर—गंगाजमुनीवाल—तौभी मन्मथ के जाल को लिए—"मिस्सी के बदनामी का पर खोसे"—अधरों को द्विजों से दबाए—दांतोंकी बत्तीसी खिलाए सुमार्गसे कुमार्ग पहुंचाने की मशाल—दुष्पथ की परिचारिका, विलासियों की सहचारिका—द्रव्य के लिए तन और मन की हारिका—सुमतिवाली बालाओं के मन में कुमति की कारिका—"बुढ़ियाबखान" सी पुस्तकों की सारिका—अपने भक्त पर जीवन की हारिका—अच्छे अच्छे कुलों का चौका लगानेवाली—अभिसारिकाओं की नौका—ऐसी प्रगल्भ मानों डाका—मदनपाठशाला की बालाओं को परकीयत्व धर्मशास्त्र सिखाने की परिभाषा—'परपतिसगम' रूप को कदर्प व्याकरण से सिद्ध कराने वाली—रति वेदांत की परिपाटी सिखाने-वाली—सुमति लोप विधायक सूत्र को कंठ करानेवाली—कुपथसरिता की सेतु—मदनगीता महामाला मंत्र की ऋषि—सुरति सिद्ध कराने की आचार्य—कामानल में हवन कराने की होता—परपुरुष आलिंगनतीर्थ में उतरने की सीढ़ी—संभोग की शिला—स्थूल काय—बलिष्ट जघा—सिंदुर रहित मांग—कंकन शून्य हाथ—स्वेत दुकूल पहने—ऐसा स्वांग किए उसी नववधू के पीछे खड़ी है

ये सब गुण उसके प्रत्यंग देखने से प्रकट होते थे ऐसी ही सखी कुलवधू को एकार लोप का आकार बना देती हैं. ईश्वर इनसे बचावे

मैंने इनके रूप भली भाँति अनिमिष नयनों से देखे पर स्वप्न में भी स्मरण न हुआ कि इन्हें पहले कभी देखा था. बार बार यही कहना पड़ा—'अहो मधुरमासां दर्शनम्" उस एकादश वार्षिकी कन्या का रूप भी विचित्र था. सांवरा मुख—काले नैन और काले चिकुर—बाल्यावस्था की भूमि में मदन किसान ने ऐसा श्रम किया था कि यौवन बीज की (के) अंकुर निकल रहे थे . बालापन में भी चतुराई, कुद सी हंसी सुराई और चतुराई दोनों सूचन करती थीं, आखें अमृत और विष की कटोरी थीं, आंचर यद्यपि सामान्य रीति से नहीं ढांकती थी तौ भी किसी किसी को देख अनेक हाव भाव करती थी . बालक और बालिकाओं के क्रीड़ा-स्थल पर जाती पर कभी किसी को देख मुसकिराकर और लाज बताकर घर में छिप जाती. सब बातें जो रसीली नवोढ़ा जानती हैं—यद्यपि उसे इनका तनिक भी अनुभव न था वह जानती थी, मानौं काम की पटशाल में उसने हाल में रति की परिपाटी ली हो . रस का अनुभव कुछ नहीं तौ भी सुन सुन के अभी से परिपक्व हो रही थी . रस की बातें सुन कर ऐसी मुसकिराती कि अधर पल्लव के बाहर मुसकिरान कभी नहीं निकलती . प्रेम की बातें सुन मुह नीचा कर लेती . फल मूल मिष्ठान्न आदि उसको बहुत अच्छे लगते थे. रजतलोह की चुम्बक, मतलब की पुरी, काम की धुरी नेह में जुरी मानौं किसी ने उसी की डुरी से बाँध दिया हो .

तीसरी कन्या, रूप की धन्या, यद्यपि केवल ६ वर्ष की तौ भी कुशल और प्रवीनता की अकुर सी जनाती थी .

इन दोनों को देख मन में यही उठता कि "होनहार विरवान के होत चीकने पात" जिनके रूप के केवल अवलोकन मात्र ही से इतने गुणों का सभव और अनुमान होना प्रत्यक्ष है तो चरित न जाने कैसे कैसे होंगे . यही बड़ी देर तक सोचता रहा . जी में आया कि निकट जाकर उस लक्ष्मी का जो ऐसी पद्मयन्मनोहरा उस पर्वत के शिखर पर आविर्भूत हुई थी कुछ वृत्तांत पूछूँ और सुनूँ. इतने ही में ऐसी पवन चली

कि विमान डगमगाने लगा कहीं सिर कहीं धड़ कहीं टोपी कहीं जूते रातदिन का ज्ञान चला गया, न जाने किस मदराचल के खोह में उलूक के समान जहाँ बेप्रमान अंधकार है जा छिपा . निकट जाने का विचार करते ईश्वर ने क्या अनाचार कर दिया कि सोचा विचारा सब नष्ट हो गया . पर यह तो घर की खेती थी . उस फूस ने तो सभी युक्तियाँ बतलाही दीं थीं अब कुछ चिंता की बात नहीं थी मैं ने सोचा कि जहाँ फिर एक गोता लगाया तहाँ ज्ञान और भान का पोता का पोता गगन गंगा के सोता से निकल चला आवैगा फिर कोई सोता भी हो तो जाग जाय, पहरे की बात नहीं इतनी नहरैं कि उसकी लहरैं बड़ा शब्द करती हैं . फिर तो 'प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम्'' यह गगनगंगा कहाँ से आई इसका कुछ ठीक पता नहीं लगता पर सुनते हैं कि महादेव नगा के जो सदा भंग में मग्न है झगा से निकलती है पर इसका क्या प्रमाण ?

पुराण .

पुराण-सुराण क्या ?

वाहजी ! कुराण (पुराण) नहीं जानते .

नहीं .

तो अधिक क्या कहैं, गंगा उस नगा के जटाजूट में छूट कर नाचती है, फिर मर्त्यलोकवासी सत्यानासी उसके कनूकों को लूट कर क्षीरसागर के वासी होते हैं . वहाँ उन्हें साक्षात् लक्ष्मी जी की झांकी होती है .

क्या वे वहा अकेली रहती हैं ?

नहीं रे मूर्ख, क्या तू ने अभी तक लक्ष्मी को नहीं जाना, वह कभी अकेली रहीं हैं कि रहैंगी, वे बड़ी चचला हैं . भगवान् शेषशायी श्यामसुदर के साथ शयन करती हैं . लिखा भी तो है "एका भार्या

प्रकृतिमुखरा चंचला च द्वितीया" पर क्या हम ऐसी बातें उस देवी के विषय में कह सक्ते हैं---नहीं नहीं भाई---वह तो हमारी पूज्य है. तौ भी सच्ची बात के कहने में क्या डर, "सत्यमेव जयते नानृतम्" साँच को आंच कहाँ. बस, अब युक्ति सोचने बैठे कि कौनसी युक्ति करैं जिसमें उस अलक्ष्य देवी के दर्शन फिर भी हों और कुछ बातचीत करैं. सोचते सोचते एक बात याद पड़ी पर लिखैंगे नहीं, लिखने की कौन बात कहैंगे भी नहीं. उसी युक्ति से फिर आँख मूदीं और क्षण भर ध्यान किया तो फिर भी उसी के सामने पहुँच गए वही मूर्ति फिर भी नैनों के सामने नाचने लगी. ऊमर के फूल सरीखे दर्शन हुए, उसकी सुंदरता देखते ही मेरी इन्द्रियां शिथिल पड़ गईं, पलकैं झपने लगीं. हाथ पैर ढीले पड़ गए मैं तो जक गया. उसी समय मूर्छित हो गिरा जाता था और भूमि ले लेता यदि मेरा एक हितकारी सेवक मुझे अपना सहारा न देता. उसके कंधे पर अपना सिर डाल कर बैठ गया. आंखें मुकुलित हो गईं, तन की सब सुधि बुधि जाती रहीं. गुलाब जल के अनेक छींटे मीठे मीठे मेरे मुख पर सींचे. धीरे धीरे संज्ञा आई. नेत्र आधे खुले, साँस बहुरी, सिर उठा कर देखा प्रणाम मन ही में किया. हृदय में हाथ जोड़े, इच्छा हुई कि कुछ बोलें और अपना जी खोलें या कहीं को डोलें सेवक ने सहारा दिया. बल पूर्वक इंद्रियों को सम्हार सरस्वती को मनाय वचन की शक्ति को तोल बोलने लगा.

'भगवति तेरे चरणकमलों को प्रणाम है', इसको सुन भगवती मौन हो रही मैं ने फिर भी कहा--

"नारायणि प्रणाम करता हूँ, भला इस दीन दास की ओर तनिक तो दया की कोर करो"--

देवी ने देखा, ऐसी दृष्टि की (कि) मानो सेतकमल की श्रेणी बरसाई हो. केवल दृष्टि मात्र से मेरा प्रणाम ग्रहण किया और अपनी पूर्वोक्त सखियों की ओर निहारी. सखीं सब मुसकिराकर रह गईं. मैं और अचंभे में हो

गया सोचने लगा यह कैसी लीला करती है . भला कुछ और इससे पूछना चाहिए . ऐसा मन में ठान फिर भी कुछ कहने को उत्सुक हुआ और निकट जा बोला .

"चंद्रमुखी यदि तुझे कष्ट न हो तो कुछ पूछूँ, मेरा जी तुझसे कुछ बात करना चाहता है ."

"भद्र कहो क्या कहते हो , जो इच्छा हो पूछो" . ऐसा कह चुप हो गई .

मैंने कहा "भद्रे—यदि क्लेश न हो तो कहो तुम किस राजर्षि की कन्या हो कहाँ तुम्हारा देश है और इस शिखरपर किस हेतु फिरती हो ?"

उसने कहा "मेरी कथा अपार है, सुनने से केवल दुःख होगा . कहना तो सहज है पर सुनकर धीरज धरना कठिन जनाता है. ऐसा कोन वज्र हृदय होगा जो उसे सुन फूट फूट कर न रोवेगा–यह मेरी अभागिनी के चरित किसने न सुने होंगे और सुनकर कौन दो आंसू न रोया होगा". इतना कह लंबी साँस लेकर नेत्रों में जल भर लिया . मैं तो सूख गया कि हा दैव इस देवी को भी दुःख है क्या ऐसी धन्य और सुंदरी को भी दुर्भाग्य ने नहीं छोड़ा . वाह रे विधाता तेरा विधान धन्य है. धिक्कार है तुझे जो सूने इस पुरायात्मा जीव पर भी दया न की . न जाने यह अपनी कथा कह कर कौन कौन विप के बीज बोवेगी और क्या क्या हाल कह कर बेहाल करेगी . फिर भी ढाढ़स बाँध बोला .

"सुंदरी मैं बहु शोकग्रस्त हुवा क्या मैंने तुम्हें कष्ट तो नहीं दिया. जान पड़ता है कि तुम्हारे पूर्व दु.ख के (की)घटा फिर से हृदय गगन पर छा गए (ई) . तो अब कही देना भला है क्यों कि "विवक्षितं ह्यनुक्तम-नुतापं–जनयति" और भी किसी परिचित या सज्जन के सामने जो दु.ख और सुख का समभागी हो कहने से दु ख घट जाता है .

"स्निग्धजनविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनम्भवति ।"

"स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते ।"

"मुझ अभागिन की कहानी भी क्या किसी को सुहानी है परंतु तुम्हारा यदि आग्रह है तो सुनो . मैं शुद्धभाव से तुम्हारे सन्मुख सब यथास्थित कहती हूँ" इतना कह कई बार लंबी लंबी सांसें भर आकाश की ओर दृष्टि कर यों बोली .

"भूमंडल में जो आखण्डल के चाप के सदृश गोलाकार है जंबू द्वीप नाम का प्रदीप जो दीपक समान मान को पाता है प्रसिद्ध क्षेत्र है. उसी-में भारतखंड, ऐसा विचित्र मानो ब्रह्मा ने स्वयं अपने हाथों से बनाया हो वर्त्तमान है . भारतखंड में अनेक खंड हैं पर आर्य्यावर्त्त सा मनोहर और कोई देश नहीं . पृथ्वी के अनेक द्वीप द्वीपांतर एक से एक विचित्र जिनका चित्र ही मन को हर लेता है वर्त्तमान है पर आर्य्यावर्त्त सी पुण्य भूमि न तो आँखों देखी और न कानों सुनी . इसके उत्तर भाग की सीमा में हिमालय सा ऊँचा पर्वत जो पृथ्वी के मान दण्ड के सदृश है भूलोक मात्र में ऐसा दूसरा नहीं. गंगा और यमुना सी पावन नदीं कहाँ हैं जिनके जल साक्षात् अमृतत्व को पहुँचानेवाले हैं. त्रिपथगा की जो आकाश, पाताल और मर्त्यलोक को तारती है, कौन समता कर सक्ता है . सुर और असुरों के मुकुटकुसुमों की रजराजि की परिमलवाहिनी, पितामह के कमण्डलु की धर्मरूपी द्रवधारा, धरातल में सैकड़ों सगरसुतों को सुरनगर पहुँचाने की पुण्य डोरी—ऐरावत के कपोल घिसने से जिसके तट के हरिचंदन से तरुवर स्यन्दन होकर सलिल को सुरभित करते हैं, लीला से जहाँ की सुर सुंदरियों के कुचकलशों से कंपित जिसकी तरल तरंग हैं नहाते हुए सप्तर्षियों के जटा अटवी के परिमल की पुन्यवेनी—हरिणतिलक—मुकुट के विकट जटाजूट के कुहर भ्रांति के जनित संस्कार की मानो कुटिल भौंरी, जलदकाल की सरसी, गंध से अंध हुई भ्रमर माला, छंदोविचित की मालिनी, अंध तमसा रहित भी तमसा के सहित भगवती भागीरथी हिमाचल की कन्या सी जगत् को पवित्र करती हुई, नरक से नारकियों को निकारती इस असार संसार की असारता को सार करती है.

भगवान् मदन मथन के मौलि की मालती की सुमन माला, हाला-हलकंठ वाले के काले बालों की विशाल जाला, पाला के पर्वत से निकल कर सहस्र कोसों बहती विष्णु से जगत्व्यापक सागर से मिलती रहती है. इसकी महिमा कौन कह सकता है. पद्माकर ने ठीक कहा है—

"जमपुर द्वारे के किवारे लगे तारे कोऊ
हैं न रखवारे ऐसे वन के उजारे हैं।
कहै पदमाकर तिहारे प्रनधारे जेते
करि अघमारे सुरलोक के सिधारे हैं।
सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति
पतित कतारे भवसिंधु ते उवारे हैं।
काहू ने न तारे तिन्हैं गंगा तुम तारे आजु
जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं ॥"

"लाए भूमिलोक तें जमूस जबरेई जाय
जाहिर खबर करी पापिन के मित्र की।
कहै पदमाकर विलोकि जम कही कै
विचारो तो करमगति ऐसे अपवित्र की।
जौलौं लगे कागद विचारन कछुक तौलौं
ताके कानपरी धुनि गंगा के चरित्र की,
वाके सीस ही ते ऐसी गंगाधारा बही जामें
बही बही फिरी बही चित्रहू गुपुत्र की ॥"

"गंगा के चरित्र लखि भाषै जमराज ऐसे
एरे चित्रगुप्त मेरे हुक्कुम में कान दै।
कहै पदमाकर ए नरकनि मूंदि करि
मूंदि दरवाजन को तजि यह थान दै।

देखु यह देवनदी कीन्हे सब देव याते
दूतन बुलाय के विदा के वेगि पान दै ।
फारि डारि फरद न राखु रोजनामा कहूँ
खाता खतजान दै बही को बहि जान दै ॥"

यम की छोटी बहिन यमुना से सख्यता करने से यमराज नगर के नरकादि बंदियों को मुक्ति कराने में कुछ प्रयास नहीं होता . प्रयागराज में यमुना की सहचरी होकर इस भाव को दरसाती है. इसका समागम इस स्थल पर उनकी श्याम और सेत सारी से प्रकट होता है

कहू प्रभा श्यामल, इन्द्रनीली
मोती छुरी सुदर ही जरीली ।
कहू सुमाला सित कज जाला
विभात इन्दीवरहू रसाला ॥१॥

कहू लसैं हस विहग माला
कादम्ब के सगम बीच जाला ।
कहू सुकाला गुरुपत्र राजै
मनो मही चदन शुभ्र छाजै ॥२॥

कहूँ प्रभा चदहि की निभासै
जथा तमौ छाय मिली विलासै ।
उतै शरत् मेघ सुपेत लेखा
जहाँ लखपै श्रमर छेद मेखा ॥३॥

कहूँ लपेटे भुजगो जु काले
भस्माग सों शकर केर भाले ।
लखो विभारी बहती है गगा
प्रवाह जाको यमुना प्रसगा ॥४॥

इसके दक्षिण विंध्याचल सा अचल उत्तर और दक्षिण को नापता भगवान् अगस्त्य का किंकर दृढ़वत् करता हुआ विराजमान है. इसके पुण्य चरणों को धोती मोती की माला के (की) नाईं मेकलकन्यका वहती है, यह पश्चिमवाहिनी, जिसकी सबसे विलग गति है, अपनी बहिन तापती के साथ होकर विंध्य के कदरों की दरी में तप करती, सूर्य के ताप से तापित, सौतों के सदृश अपने बहुवल्लभ सागर से जा मिलती है. नर्मदा के दक्षिण दंडकारण्य का एक देश दक्षिण कोशल के नाम से प्रसिद्ध है.

याही मग है कै गए दंडकवन श्रीराम।
तासों पावन देश यह विंध्याटवी ललाम।
विंध्याटवी ललाम तीर तरुवर सों छाई।
केतकि कैरव कुमुद कमल के बरन सुहाई।
भज जगमोहन सिंह न शोभा जात सराही।
ऐसो वन रमनीय गए रघुवर मग याही॥
शाल ताल हिंतालवर सोभित तरुन तमाल।
नव कदंब अरु अंब बहु विलसत निम्ब विशाल।
विलसत निम्ब विशाल इंगुदी अरु आमलकी।
सरो सिंसिपा सीसम की शोभा शुभ झलकी।
भन जगमोहन सिंह दगन प्रिय लगत पियाला।
वर जामुन कचनार सुपीपर परम रसाला॥
डोलत जहँ इत उत बहुत सारस हंस चकोर।
कूजित कोकिल तरु तरुन नाचत जहँ तहँ मोर।
नाचत जहँ तहँ मोर रोर तमचोर मचावत।
गावत जित तित चक्रवाक विहरत पारावत।
भन जगमोहन सिंह सारिका शुक बहु बोलत।
बक जल कुक्कुट कारंडव जहँ प्रमुदित डोलत॥

बहत महानदि, जोगिनी, शिवनद तरल तरग।
कक गृध्र कंचन निकर जहँ गिरि अतिहिं उतग।
जहँगिरि अतिहि उतग लसत शृंगन मन भाए।
जिनपै बहु मृग चरहिं मिष्ठ तृन नीर लुभाए।
सघन वृच्छ तरुलता मिले गहवर घर उलहत।
जिनमें सूरज किरन पत्र रंध्रन नहिं निवहत।

मैं कहाँ तक इस सुदर देश का वर्णन करूँ, कहीं कहीं कोमल कोमल श्याम—कहीं भयकर और रूखे सूखे वन—कहीं झरनों का झकार, कहीं तीर्थ के आकार-मनोहर मनोहर दिखाते हैं कहीं कोई बनैला जतु प्रचड स्वर से बोलता है—कही कोई मौन ही होकर डोलता है—कहीं विहगमों का शोर कहीं निष्कूजित निकुंजों के छोर—कहीं नाचते हुए मोर—कहीं विचित्र तमचोर—कहीं स्वेच्छाहार विहार करके सोते हुए अजगर, जिनका गभीर घोष कदरों में प्रतिध्वनित हो रहा है—कहीं भुजगों की श्वास से अग्नि की ज्वाला प्रदीप्त होती है—कहीं बड़े बड़े भारी भीम भयानक अजगर सूर्य के (की) किरणों में घाम लेते हैं जिनके प्यासे मुखों पर झरनों के कनूके पड़ते हैं-शोभित हैं-

जहाँ की निर्झरिनीं—जिनके तीर वानीर के भिरे मदकल कूजित विहगमों से शोभित हैं—जिनके मूल से स्वच्छ और शीतल जलधारा बहती हैं—और जिनके किनारे के श्याम जम्बू के निकुज फलभार से नमित जनाते हैं—शब्दायमान होकर झरती हैं.

जहाँ के गिरि विवर तुहिरे के तिमिर से छाये हैं. इनमें से भालुनी धुरकार करतीं निकलकर पुष्पों की टट्टियों के बीच प्रतिदिन विचरतीं दिखाई देतीं हैं. जहाँ के शल्लकी वृक्षों की छाल में हाथी अपना बदन रगड़ रगड़ खुजली मिटाते हैं और उनमें से निकला क्षीर सब वन के सीतल समीर को सुरभित करता है

ये वही गिरि हैं जहाँ मत्तमयूरों का जूथ वरूथ का वरूथ होकर वन को अपनी कुहुक से प्रसन्न करता है. ये वही वन की स्थलीं हैं जहाँ मत्त मत्त हरिण हरिणियाँ समेत विचरते हैं.

मंजु वंजुल की लता और नील निचुल के निकुंज जिनके पत्ता ऐसे सघन जो सूर्य की किरनौं को भी नहीं निकलने देते इस नदी के तट पर शोभित हैं.

कुंज में तम का पुंज पुंजित है, जिसमें श्याम तमाल की शाखा निंब के पीत पत्रों से मिलीं हैं. रसाल का वृक्ष अपने विशाल हाथों को पिप्पल के चंचल प्रवालों से मिलाता है, कोई लता जम्बू से लिपट कर अपनी लहराती हुई डार को सबसे ऊपर निकालती है. अशोक के ललित पुष्पमय स्तबक झूमते हैं, माधवी तुषार के सदृश पत्रों को दिखलाती है, और अनेक वृक्ष अपनी पुष्पनमित डारों से पुष्प की वृष्टि करते हैं. पवन सुगंध के भार से मंद मंद चलती है केवल निर्झर का रव सुनाई पड़ता है कभी कभी कोइल का बोल दूर से सुनाता है और कलरव का कलरव निकटस्थित वृक्ष से सुनाई पड़ता है.

ऐसे दण्डकारण्य के प्रदेश में भगवती चित्रोत्पला जो नीलोत्पला की झाड़ी और मनोहर मनोहर पहाड़ी के बीच होकर बहती है कंकगृध्र नामक पर्वत से निकल अनेक अनेक दुर्गम विषम और असम भूमि के ऊपर से बहुत से तीर्थ और नगरों को अपने पुण्यजल से पावन करती पूर्व समुद्र में गिरती है.

यच्छ्रीमहादेव पदद्वयम्मुहुर्महानदी स्पर्शति वै दिवानिशम् ।
तदेव तन्नीरमभूत्परं शुचि नवद्वयद्वीपपुनीतकारकम् ॥

इसी नदी के तीर अनेक जंगली गाँव बसे हैं. वहाँ के वासी वन्य पशुओं की भाँति आचरण करने में कुछ कम नहीं हैं. पर मेरा ग्राम इन सभों से उत्कृष्ट और शिष्टजनों से पूरित है—इसके नाम ही को

मुख छबि कहि न जाय मो पांही। जो बिलोकि बहु काम लजाही॥
उर मणिमाल कंबु कल ग्रीवा। कामकलभ कर भुजबल सीवा॥

राजत राम समाज महँ कोशल राजकिशोर
सुंदर श्यामल गौर तनु विश्वविलोचन चोर।

शरद चंद्र निंदक मुख नीके। नीरज नैन भावते जी के॥
चितवनि चारु मार मनहरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदुबोला॥
कुमुद बंधु कर निंदक हासा। भृकुटी विकट मनोहर नासा॥
भाल विशाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥
पीत चौतनी सिरन सुहाई। कुसुमकली बिचबीच बनाई॥
रेखैं रुचिर कंबु कलग्रीवा। जनु त्रिभुवन सुखमा की सीवा॥

कुंजर मणिकंठाकलित उर तुलसी की माल।
वृषभ कंध केहरिठवनि बल निधि बाहु विशाल॥"

ऐसा सुन्दर ग्राम जिसमें श्यामसुंदर स्वयं विराजमान हैं—मेरा जन्मस्थान था. राग भी राग और विराग दोनों देता है. देवालयों की अवली नदी के तीर में नीर पर परछाहीं फेंकती है—ऐसा जान पड़ता है कि जितने ऊँचे कगूरों से वह अंबर को छूती है उसी भाँति पाताल की गहराई भी नापती है—जहाँ विचित्र पांथशाला—शाला और बालक पाठशाला—न्यायाधीश और प्रबंधकों के आगार—बनियों का व्यापार जिनके द्वारे फूलों के हार टगे हैं जहाँ की (के) राजपथों पर व्योपारियों की भीर सदैव गभीर सागर सी बनी रहती है चित्त पर ऐसा असर करती है जो लिखने के बाहर है.

चौड़े चौड़े राजपथ संकीर्ण बीथी अमराइयाँ और नदी के तट सब अभिसारिका और नागरों के सहायक हैं! विलासियों का सहेट अभि-

सुन कर तुम जानोगे कि वह कैसा ग्राम है " इतना कह चुप हो रही. मैंने कहा "धन्य है सुदरी तूने बडी दया की जो इतना श्रम कर इस अपावन जन के कानों को ऐसा मनोहर वर्णन सुना के पावन किया. यदि कष्ट न हो तो और सुनावो" देवी मुसकिरा के बोली "भद्र सुनो कहती हूँ" इसकी मुसकिराहट ने मेरे हृदय गगन का तिमिर तुरत ही मिटा दिया और बोली "इस पावन अभिराम ग्राम का नाम **श्यामापुर** है यहाँ आम के आराम थकित पथिक और पवित्र यात्रियों को विश्राम और आराम देते हैं--यहाँ क्षीरसागर के भगवान् नारायण का मदिर सुखकदर इसी गगा के तट पर विराजमान है . राम लक्ष्मण और जानकी की मूर्तें सजीव सूरतें सी झलकती हैं . ऐसा जान पडता है मानो अभी उठी बैठती हों मदिर के चारों ओर गौर उपल की छरदिवाली दिवाली की शोभा को लजाती है मदिर तो ऐसा जान पडता है मानो प्रालेय पर्वत का कदर हो भगवान् रामचद्र के सन्मुख गरड़ की सुदर मूर्त्ति कर कमल जोरे सेवा की तत्परता सुचाती है सोने का घटा सोने ही की साकर में लटका धर्म के अटका सा झूलता दीन दु खी दर्शनियों के खटका को सटकाता है . भटका भटका भी कोई यद्यपि किसी दु ख का झटका खाए हो यहाँ आकर विराम पाता है, और मनोरजन दु खभजन खजन—गजन विलोल विलोचनी जनकदुलारी के कृपाकटाक्ष को देखते ही सब दु ख दारिद्र छुटाता है राम और लक्ष्मण की शोभा कौन कह सक्ता है—

"शोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा । नील पीत जलजात सरीरा ॥
मोर पख सिर सोहत नीके । गुच्छे बिच बिच कुसुमकली के ॥
भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए । श्रवण सुभग भूषण छबि छाए ॥
विकट भृकुटि कच घूँघरवारे । नव सरोज लोचन रतनारे ॥
चारु चिबुक नासिका कपोला । हास विलास लेत मन मोला ॥

मुख छवि कहि न जाय मो पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाही॥
उर मणिमाल कंबु कल ग्रीवा। कामकलभ कर भुजबल सीवा॥

राजत राम समाज महँ कोशल राजकिशोर
सुंदर श्यामल गौर तनु विश्वविलोचन चोर।

शरद चंद्र निदंक मुख नीके। नीरज नैन भावते जी के॥
चितवनि चारु मार मनहरनी। भावति हृदय जाति नहिं वरनी॥
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदुबोला॥
कुमुद बंधु कर निंदक हासा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा॥
भाल विशाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥
पीत चौतनी सिरन सुहाई। कुसुमकली बिचबीच बनाई॥
रेखैं रुचिर कंबु कलग्रीवा। जनु त्रिभुवन सुखमा की सीवा॥

कुंजर मणिकंठाकलित उर तुलसी की माल।
वृषभ कंध केहरिठवनि बल निधि बाहु विशाल॥"

ऐसा सुन्दर ग्राम जिसमें श्यामसुंदर स्वयं विराजमान हैं—मेरा जन्मस्थान था. याग भी राग और विराग दोनों देता है. देवालयों की अवली नदी के तीर में नीर पर परछाहीं फेंकती है—ऐसा जान पड़ता है कि जितने ऊँचे कगूरों से वह अंबर को छूती है उसी भाँति पाताल की गहराई भी नापती है—जहाँ विचित्र पांथशाला—बाला और बालक पाठशाला—न्यायाधीश और प्रबंधकों के आगार—बनियों का व्यापार जिनके द्वारे फूलों के हार टगे हैं जहाँ की (के) राजपथों पर ब्योपारियों की भीर सदैव गभीर सागर सी बनी रहती है चित्त पर ऐसा असर करती है जो लिखने के बाहर है.

चौड़े चौड़े राजपथ संकीर्ण वीथी अमराइयाँ और नदी के तट सब अभिसारिका और नागरों के सहायक हैं! विलासियों का सहेट अभि-

सारिकों का झपेट अनगरग का लपेट सपत्न जनों का दपेट सबका सब मन को प्रफुल्लित करता है .

पुराने टूटे फूटे दिवाले इस ग्राम के (की) प्राचीनता के साक्षी हैं. ग्राम के सीमांत के झाड़ जहाँ झुंड के झुंड कौवे और बकुले बसेरा लेते हैं गवँई की शोभा बताते हैं. प्यौ फटते और गोधूली के समय गैयों के खिरके की शोभा जिनके खुरों से उडी धूल ऐसी गलियों में छा जाती है मानो कुहिरा गिरता हो, ये भी ग्राम में एक अभिसार का अच्छा समय होता है

"गोप अथाइन तें उठे गोरज छाई गैल ।
चलु न अली अभिसार की भली सझौखी सैल ॥"

यहाँ के कोविद भरथरी—गोपीचंदा—भोज—विक्रम—(जिसे 'विक्रमाजीत' कहते हैं) लोरिक और चंदैनी—मीराबाई—आल्हा—ढोला-मारू—हरदौल इत्यादिकों की कथा के रसिक हैं—ये विचारे सीधे साधे बुड्ढे जाड़े के दिनों में किसी गरम कौड़े के चारों ओर प्यौर बिछा बिछा के अपने परिजनों के साथ युवती और वृद्धा बालक और बालिका युवा और वृद्ध सबके सब बैठ कथा कह कह दिन बिताते हैं .

कोई पढ़ा लिखा पुरुष रामायण और व्रजविलास की पोथी बांचकर टेढ़ा मेढ़ा अर्थ कह सभों में चतुर बन जाता है, ठीक है .

"निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते".

कोई लड़ाई का हाल कहते कहते बेहाल हो जाता है—कोई किसी प्रेम कहानी को सुन किसी के (की) प्रबल विरहवेदना को अनुभव कर आँसू भर लेता है—कोई इन्हें मूर्ख ही समझकर हँस देता है अहीर अहिरिनों के प्रश्नोत्तर सारहों में हुआ करते हैं . यह भोली " - भी कैसी होती है—अनुप्रास भी कैसा इन ग्रामीणों को सुख

"दिया बुदौना के गोठ परोसिन मोला कथै

करमा

आमा डार कोइली सुवा बोलै कागा—ध्रुव—
पर्रा में लालभाजी छानी मा आदा
तोर मुटियारी. मजा मँगै राजा"—आमा

धानों के खेत जो गरीबों के धन हैं इस ग्राम की शोभा बढ़ाते हैं. मेरा इसी ग्राम का जन्म है. मेरे पिता का वंश और गोत्र दोनों प्रशंसनीय हैं. मेरे पुरुषा प्रथम तो ब्रह्मावर्त्त से उत्कल देश में जा बसे थे. वहाँ बिचारे भले भले आदमियों का संग करते करते कुछ काल के अनंतर उत्कल देश को छोड़ राजदुर्ग नामक नगर में जा बसे. उत्कल देश के जलवायु अच्छे न होने के कारण वह देश तजना पड़ा. ऋषि वंश के अवतंस हमारे प्रपितामहादिक पूजा पाठ में अपने दिन बिताते रहे. कई वर्षों के अनंतर दुर्भिक्ष पड़ा और पशुपक्षी मनुष्य इत्यादि सब व्याकुल होकर उदर पोषण की चिंता में लग गए उन लोगों की कोई जीविका तो रही नहीं, और रही भी तो अब स्मृति पर भ्रांति का जलदपटल छा जाने के हेतु सब काल ने विस्मरण करा दिया. नदी नारे सूख गए जनेऊ सी सूक्ष्मधार बड़े बड़े नदों की हो गई. मही जो एक समय तृणों से संकुल थी बिल्कुल उससे रहित हो गई. सावन के मेघ भयावन शरत्कालीन जलदों की भांति हो गए. प्यासी धरनी की देख पयोदों को तनिक दया न आई. बिचारे पपीहा के पीपी रटने पर भी पयोद न पसीजा और न उसके चंचुपुट में एक बुंद निचोया. इस धरनी के भूखे संतान क्षुधा से क्षुधित होकर व्याकुल घूमने लगे. गैयों की कौन दशा कहे ये तो पशु हैं. खेत सूखे साखे रोड़ेमय दिखाने लगे. शालि के अंकुर तक न हुए किसानों ने घर की पूँजी भी गँवा दी. बीज बोकर उसका एक अंश भी न पाया. "यह कलियुग नहीं करजुग है इस हाथ ले उस हाथ दे"— इस कहावत को भी झूटी कर दिया अर्थात् कृषी लोगों ने कितना ही पृथ्वी को बीज दिया पर उसने कुछ भी न दिया. छोटे छोटे बालकों को

सारिकों का झपेट अनगरग का लपेट सपत्न जनों का दपेट सबका सब मन को प्रफुल्लित करता है .

पुराने टूटे फूटे दिवाले इस ग्राम के (की) प्राचीनता के साक्षी हैं. ग्राम के सीमांत के झाड़ जहाँ झुड के झुड कौवे और बकुले बसेरा लेते हैं गवँई की शोभा बताते हैं. प्यौं फटते और गोधूली के समय गैयों के खिरके की शोभा जिनके खुरों से उड़ी धूल ऐसी गलियों में छा जाती है मानो कुहिरा गिरता हो. ये भी ग्राम में एक अभिसार का अच्छा समय होता है

"गोप अथाइन तें उठे गोरज छाई गैल।
चलु न अलो अभिसार की भली सभोली सैल ॥"

यहाँ के कोविद भरथरी—गोपीचदा—भोज—विक्रम—(जिसे 'विकरमाजीत' कहते हैं) लोरिक और चदैनी—मीराबाई—आल्हा—ढोला-मारू—हरदौल इत्यादिकों की कथा के रसिक हैं—ये विचारे सीधे साधे बुड्ढे जाड़े के दिनों में किसी गरम कौड़े के चारों ओर प्यार बिछा बिछा के अपने परिजनों के साथ युवती और वृद्धा बालक और बालिका युवा और वृद्ध सबके सब बैठ कथा कह कह दिन बिताते हैं .

कोई पढ़ा लिखा पुरुष रामायण और बृजविलास की पोथी बाँचकर टेढ़ा मेढ़ा अर्थ कह सभों में चतुर बन जाता है, ठीक है .

"निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते".

कोई लड़ाई का हाल कहते कहते बेहाल हो जाता है—कोई किसी प्रेम कहानी को सुन किसी के (की) प्रबल विरहवेदना को अनुभव कर आँसू भर लेता है—कोई इन्हें मूर्ख ही समझकर हँस देता है अहीर अहिरिनों के प्रश्नोत्तर माल्हो में हुआ करते हैं . यह भोली कविता भी कैसी होती है—अनुप्रास भी कैसा इन ग्रामीणों को सुखद होता है—

"देख बुदौना के गोठ परोसिन मोला कथै चलकोलामा"

करमा

आमा डार कोइलो सुवा बोलै कागा—ध्रुव—
पर्रा में लालभाजी छानी मा आदा
तोर मुटियारी मजा मेंनै राजा"—आमा

धानों के खेत जो गरीबों के धन हैं इस ग्राम की शोभा बढ़ाते हैं. मेरा इसी ग्राम का जन्म है. मेरे पिता का वंश और गोत्र दोनों प्रशंसनीय हैं. मेरे पुरुषा प्रथम तो ब्रह्मावर्त्त से उत्कल देश में जा बसे थे. वहाँ विचारे भले भले आदमियों का संग करते करते कुछ काल के अनंतर उत्कल देश को छोड़ राजदुर्ग नामक नगर में आ बसे. उत्कल देश के जलवायु अच्छे न होने के कारण वह देश तजना पड़ा. ऋषि वंश के अवतंस हमारे प्रपितामहादिक पूजा पाठ में अपने दिन बिताते रहे. कई वर्षों के अनंतर दुर्भिक्ष पड़ा और पशुपक्षी मनुष्य इत्यादि सब व्याकुल होकर उदर पोषण की चिंता में लग गए उन लोगों की कोई जीविका तो रही नहीं, और रही भी तो अब स्मृति पर भ्रांति का जलदपटल छा जाने के हेतु सब काल ने विस्मरण करा दिया. नदी नारे सूख गए जनेऊ सी सूक्ष्मधार बड़े बड़े नदों की हो गई. मही जो एक समय तृणों से संकुल थी बिलकुल उससे रहित हो गई. सावन के मेघ भयावन शरत्कालीन जलदों की भांति हो गए. प्यासी धरनी को देख पयोदों को तनिक दया न आई. बिचारे पपीहा के पीपी रटने पर भी पयोद न पसीजा और न उसके चंचुपुट में एक बुंद निचोया. इस धरनी के भूखे संतान क्षुधा से क्षुधित होकर व्याकुल घूमने लगे. गैयों की कौन दशा कहे ये तो पशु हैं. खेत सूखे साखे रोहोंमय दिखाने लगे. शालि के अंकुर तक न हुए किसानों ने घर की पूँजी भी गँवा दी. बीज बोकर उसका एक अंश भी न पाया. 'यह कलियुग नहीं करजुग है इस हाथ ले उस हाथ दे"— इस कहावत को भी झूठी कर दिया अर्थात् कृषी लोगों ने कितना ही पृथ्वी को बीज दिया पर उसने कुछ भी न दिया. छोटे छोटे बालकों को

उनकी माता थोड़े थोड़े धान्य के पलटे बेचने लगी. माता पुत्र औ पिता पुत्र का प्रेम जाता रहा. बड़े बड़े धनाढ्य लोगों की स्त्रियाँ जिन पवित्र घूँघट कभी बेमर्यादा किसी के सन्मुख नहीं उघरे और जिन् आर्य्यावर्त्त की सुचाल ने अभी तक घर के भीतर रक्खा था अपने पुत्रों साथ बाहर निकल पथिकों के सामने रो रो और आँचर पसार पसार ए मुठी दाने के लिए करुणा करने लगीं. जब ससार की ऐसी गति थी त हमारे पूर्व पुरुषों की कौन गति रही होगी ईश्वर जानै. मैं न जाने कि योनि में तब तक थी. जब वे लोग राजदुर्ग में आए किसी भाँति अपन निर्वाह करने लगे. ब्राह्मण की सीधी साधी वृत्ति से जीविका चलती थी किसी को विवाह का मुहुर्त्त धरा—कहीं सत्यनारायण कहा—कहीं रुद्र भिषेक कराया—कहीं पिराइदान दिलाया और कहीं पोथी पुरान कहा द्वादशी का सीधा लेते लेते दिन बीते. इसी प्रकार जीविका कुछ दि चली. मेरे पितामह पितामह के वंश के हस थे. उनका नाम अवधे था. उनके दो विवाह हुए. उनकी दोनों पत्नीं अर्थात् मेरी पितामहीं ब कुलीना थीं. एक का नाम कौशल्या और दूसरी का अहल्या था अवधेश को कौशल्या से एक पुत्र हुवा. उसका सब सिष्टों ने मिल कर इष्ट सा वसिष्ट सा वसिष्ठ नाम धरा. ये मेरे पूज्यपाद परमोदार पर सौजन्य-सागर सब गुनों के आगर जनक थे. कुछ काल बीत पर कौशल्या सुरपुर सिधारी, उस समय मेरे पिता कुछ बहुत ब नहीं थे. शोकसागर में डूबे, पर दैव से किसका बल चलता है. थोड़े दिनों के उपरांत भगवान् चक्रधर की दया से अहल्या को एक बाल और एक बालिका हुई. बालक का नाम नारद और बाला का गोम पड़ा. यह वही गोमती मेरे पीछे बैठी है. इस अभागिन के (की) कुंडली ऐसे बाल वैधव्य जोग पड़े थे कि यह बिचारी अपना सुहाग खो बैठी. इस कथा कहाँ तक कहूँगी. अभागिनियों की भी कहानी कभी सुहावनी हुई है मेरे पिता जब युवा हुए अवधेशजी ने चाव चाव से उनका विवाह शारं

पाणि की बेटी मुरला से कराया. शारंगपाणि का कुल इस देश के ब्राह्मणों में विदित है, "यथा नामा तथा गुणाः" अतएव उनका कुछ बहुत विवरण नहीं किया. कुछ काल बीते मेरी माता गर्भवती हुई. इस समय मेरे पितामह काल कर चुके थे. अपने नातीपंती का सुख न देख सके अहल्या भी अनेक तीर्थों का सलिल बुंद पान करते—अपने तन को अनित्य जान तीर्थाटन में लग गई थी. इसलिए इस समय घर में न थी. नौ मास के उपरांत दशम मास में मेरे पिता के एक कन्या हुई, इसे लोग साक्षात् रमा का रूप कहते थे. यह जेठी कन्या थी. इसके अनंतर एक कन्या और हुई. उसका नाम सत्यवती पड़ा. फिर कई वर्षों में भगवान् ने एक सुत का चद्रमुख दिखाया. सब भवन में उजेला छा गया. गाजे बाजे बजने लगे जो कुछ बन पड़ा दान पुन्य भिखारी और जाचकों को दिया. पुन्नाम नरक के तारने वाले बालक ने मेरी माता की कोंख उजागर की. पर हाय "मेटत हितु सामर्थ को लिखे भाल के अंक"—विधाता से यह न सहा गया. सुख के पीछे दुःख दिखाया—अर्थात् कुटिल काल ने इसे कवल कर लिया.

"धिक धिक काल कुटिल जड़ करनी
तुम अनीति जग जाति न बरनी"

माता बिचारी डाह मार मार कर रोने लगी. घर में छोटे बड़े और टोला परोसियों के उत्साह भंग हो गए. जितने लोग पहले सुखी हुए थे उससे अधिक दुःखी हुए. आँसुओं से सब घर भर गया. पिता हमारे ज्ञानी थे, आप भी ढाढ़स कर सबों को जेठे की भाँति प्रबोध किया और बालक का मृतक कर्म्म करने लगे. काल ऐसा है कि दुस्तर दुःख के घावों को भी पुरा देता है. जो आज था सो कल न रहा. करह सा परसों न रहा. इसी भाँति फिर सब भूल गए—पर पुत्रशोक अति कठिन होता है. पिता के सदैव इसका काँटा छाती में समा गया. कभी सुखी न रहे—

इस दारुन विपत्ति को स्मरण कर फिर भी सजल नैनों से माता हमारी को दशा देख विलाप करने लगते. फिर गिरस्ती में लोग लगे—कुछ काल के अनन्तर उन्हें एक कन्या और हुई. इसका नाम पत्रिका के अनुसार सुशीला पड़ा सो हे भद्र! देखो यहीं सत्यवती और सुशीला मेरी दोनों भगिनी सहोदरी हैं और मुझ अभागिन का नाम श्यामा है"— इतना कह चुप हो रही. इस नाम के सुनते ही मेरा करेजा कँप उठा और सज्ञा जाती रही—हाय हाय! कहता भूमि में गिर पड़ा और स्वप्न-तरंग में डूब गया.

इति प्रथम स्वप्न.

अथ दूसरे याम का स्वप्न

कवित्त

आनँद सहित कृष्णचंद्र द्वारका के बीच
रुकमिनी जू के महल पर जागे हैं सोय
सपने में देखो ब्रजराज ब्रजवासिन के
घर घर हाय ब्रजराज को विलाप होय
खगन में मिलाप बाढ़ो मदन को दाब बोधा
परम प्रलाप हरि हिय में न सके गोय
हाय नंद बाबा हाय मैया हाय मधुबन
हाय ब्रजवासी हाय राधे कहि दीन्हो रोय.

ग्रीष्म की रातें कैसी सुखद होती हैं—पर सुख का समय बात की बात में कट जाता है. चाँदनी खिली थी तारे छिटके थे, दूसरा पहर रात का लग गया था मैं अपनी अकेली सेज पर बाहु का उपधान किए सोता था. श्यामा का ध्यान लगाकर मग्न था, इतने ही में कोई पहरेवाला गा उठा.

अहो अहो बन के रुख कहूँ देख्यो पिय प्यारो।
मेरी हाथ छुड़ाय कहो वह किते सिधारो॥

उस ध्यान से विलग हो गया—फिर भी वही मोहिनी मूरति सामने दिखाई दी. मैं तो उसे देखते ही भूमि पर गिर पड़ा था. अब कुछ संज्ञा हुई सेवक ने धीरज धराया. मुझे बहुत समझा बुझा कर अपने आप में लाया और बोला—

"यह किस बखेडे में पडे—महाराज—सचेत होकर इसकी मनोरंजनी कहानी को तो पूरी सुनिए. यह क्या बात थी जो आपको उसका नाम सुनते ही मोह और मूर्छा आ गई".

मैंने कहा—"मुझै भी इस मोह का कारण नहीं ज्ञात हुआ कि अकस्मात् क्यों ऐसा हो गया था"—

इतना कह मैंने श्यामा की ओर देखा. उसका मुख भी मलीन पड गया था. इसको देख मुझे और भी शंका हुई कि यह क्या विचित्र लीला है. भला मैं तो ऐसा हो गया पर यह भोली किस भ्रम में पड़ी है. हृदय के शोक को रोक पूछा—

"सुंदरी तुम्हारी यह क्या दशा है—तुम क्यों मलीन पड़ती जाती हो"—

श्यामा ने कहा—"कुछ नहीं, इसका सब वृत्त तुम आप धीरे धीरे जान जावगे. केवल चित्त लगाकर सुनौ, भला तुम क्यों नि:संज्ञ हो गए थे—"

"क्या जानूँ यह क्या मुझे हो गया था—पर अब सुनता हूँ कहिए"—इतना कह मैं चुप हो गया.

श्यामा बोली—"जब मैं छोटी थी मुझे माता पिता बड़े लाड में रखते थे—उनके कोई पुत्र न रहने के कारण मैं उनके नेत्रों की पुतरी थी और वे लोग मुझे सदा हाथ ही पर धरे रहते थे, रात दिन मेरे लालन और पालन ही में लगे रहते. थोड़े दिनों पर मेरे प्रथम के संस्कार करके मुझे मेरे माता पिता ने एक बाला पाठशाला में विद्याउपार्जन के हेतु भेज दिया. यह पाठशाला ग्राम के कारन बहुत भारी न थी—तौ भी २० या २५ बालिकाओं से कम प्रति दिन इस शाला में पढ़ने को नहीं जातीं थीं. मेरे साथ अनेक बाला पढ़तीं थीं पर ईश्वर की दया से मैं इतने शीघ्र पढ़ गई कि मेरी बराबरी पुरानी विद्यार्थिनी भी न कर सकीं.

हाँ—एक तो मालती और एक माधवी मेरी सहपाठिनी थीं . उनसे मेरा निरंतर स्नेह बना रहता, और एक दूसरे के घर उठने बैठने उत्सवों में और सहज रीति पर भी आया जाया करतीं . जब मैं पढ़ लिख चुकी पाठशाला को छोड़ घर बार के काम में तत्पर हुई और मेरे पिता ने मेरे विवाह की चिंता की . धनहीन होने के कारन कोई कुलीन ब्राह्मण नहीं मिला और मिला भी तो मुझ दीना का पाणिग्रहण करने को उपस्थित न हुआ . मेरे पिता की चिंता बढ़ी और उनने इसका उद्योग किया . मेरे पिता यहाँ के विख्यात प्रतिष्ठित परिव्राजक राजकुल के मान्य कार्य्याध्यक्ष थे . उस कुल का नाम इस देश की पुरानी बुरी परिपाटी के अनुसार कपटनाग था . मैं नहीं जानती इस बड़े कुल का ऐसा बुरा नाम क्यों पड़ा . इसका वृत्तांत न तो मैंने कभी पूछने की इच्छा रक्खी और न कभी मेरे पिता ने मुझसे कहा इसी से मुझे नहीं ज्ञात है—पर नाम से कुछ प्रयोजन नहीं . कुल देखना चाहिए . अभी तक पाटलीपुत्र के एक मुख्य नवाब के कुल का नाम "नवाब गदहिया" है . कपटनाग का कुल इस देश में बड़ा मान्य और पूज्य था . इसकी गद्दी पुराने महाराजों के समय से अखंडित चली आती थी और इसमें अनेक पहुँचे पुरुष भी हुए . ए एक चालीसी के अधिपति थे . वहाँ से मेरे पिता ने बहुत कमाया था . और सामान्य रीति पर भोजन आच्छादन की कुछ कमती नहीं रहती थी .

इसी ग्राम में एक सुंदर कुलीन क्षत्रियवंश के अवतंस श्री यहाँ के अधिपति थे . इनका लांछनरहित कुल देश देशांतरों में प्रसिद्ध था और इनकी बात का प्रमाण था . इनके माता पिता का हाल मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं पर ये विद्या के सागर—सब गुणों में आगर—काव्य में कुशल—बल में प्रबल—नवल नागर लंबे लंबे बाहु—प्रशस्त ललाट काले काले नेत्र—काली काली भौंहें—गेहुँआ रंग—चतुराई के सदन—, इसी ग्राम में बहुत काल से बसते थे . रात दिन पठन-पाठन में इनका

हो , मैं उनकी ओर सहज भाव से देखने लगी . वे नीचे मस्तक किए कुछ गुनगुनाते थे . कभी ऊपर देख कुछ लिख लेते और फिर कुछ सोचने लगते—मैं तो उनके स्वभाव को भली भाँति जानती थी—मैंने जान लिया कि वे कुछ कविता करते होंगे . एक बेर और मैंने उनको भली भाँति देखा और अचांचक उनकी भी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी . वे मेरी ओर एक टक देखने लगे और मैं भी अनिमिष नैनों से उन्हें निहारती रही .

"भए बिलोचन चारु अचंचल ।
मनहु सकुचि निमि तज्यो दृगंचल ॥"

यद्यपि मैं उन्हें प्रतिदिन देखती थी तौ भी उस दिन उनके मुखार-बिंद की कुछ और शोभा रही मैंने भी उनके निहारने से जान लिया कि वे भी आज मुझे किसी और भाव से देख रहे हैं . तौ भी मेरा जी विश्वस्त था . मैं उनके स्वभाव को जानती थी और परिचित भी थी . मैंने और कोई चेष्टा नैन या कर से नहीं की, स्तब्ध सी वहीं खड़ी रही, पर हृदय में उस समय अनेक प्रकार के भाव आए, कुछ लज्जा भी हुई दृष्टि नीचे कर ली . फिर सिर उठाकर उसी जगन्मोहन को देखा . उनको देखकर मुसकिराई . वे भी मेरे हृदय के भाव अपने हृदय में गुन मुसकिरा गए, मेरी बहिनें सत्यवती और सुशीला यद्यपि मेरे साथ वहीं थीं पर कुछ न समझ सकीं—हाँ, वृंदा जब आई मेरी तन की बुरी दशा देख पूछने लगी .

"श्यामा—आज तेरे शरीर की यह दशा कैसी हो गई . तू तो कभी इतना बिलंब अटा पै नहीं करती थी आज क्या हो गया . देख मुझसे मत छिपावै , मैं सब अंत में जान ही जाऊँगी"—इतना कह उसने मेरी ओर देख श्यामसुंदर की ओर देखा .

"कुछ तो नहीं—मेरी क्या गति होगी . जो गति रोज की सोई

चित्त रहता . काव्यकला ने हृदय का कपाट खोल दिया था . ये सब बातें इनके ललाट ही से जान पड़ती थीं . सुडौल अंग अनंग के आलय थे . चिकने और काले काले बाल युवतियों के मन को काल थे . मधुर मधुर बोली हमारी हमजोली के मन को नवनीत सरीखा पिघला देती थी . इनकी चितवन से प्रेम और विश्वास प्रकट होते थे बड़े गंभीर और धीर-नीर के सदृश स्वच्छ निष्कपट चित्त असंख्य वित्त के आगार—मुझे बहुत भले जनाते थे . कोमल कमल से कर—छोटी छोटी दाढ़ी और मूछें जवानी के आगम को सुचाती थी, विद्या और कविता तो इनके जिह्वा पर नाचती थी और इस दोहे को सार्थ करनेवाले इनमें सभी गुण थे—

"तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रति रंग ।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग—॥"

देश देशांतर के पंडित और गुणी इनका नाम सुयश और दातृत्व सुन स्वयं आते और उनका यथोचित कालानुसार मान पान भी होता . इनका नाम **श्यामसुंदर** था . इनकी वय केवल २६ वर्ष की थी . ये हमारे परोसी थे . और मुझसे इनकी कुछ कुछ जान पहिचान भी रही. इस समय मेरी भी वय ठीक १४ की थी पर विद्यालाभ के कारन सभी बातें कुछ कुछ समझ लेती थी .

श्यामसुंदर मेरे परोसी होने के हेतु दिन में दो चार बार भेंट करते . मैं भी उन्हें अपना हितू और सहायक जान प्रायः बोलचाल करती थी . एक दिन प्रातःकाल को जब मैं स्नान करके अपने (नी) अटा पर चढ़ी बाल सुखा रही थी श्यामसुंदर अपने कविताकुटीर के तीर बैठा कुछ बना रहा था . मुझे नहीं मालूम क्या लिखता था . द्वार पर लता छाई थी और उसके पता के फैलाव से उसका मुख कुछ ढका और कुछ प्रकट था. ऐसा जान पड़ता था कि उस मंडप में अकेला गुलाब का फूल खिला

हों . मैं उनकी ओर सहज भाव से देखने लगी . वे नीचे मस्तक किए कुछ गुनगुनाते थे . कभी ऊपर देख कुछ लिख लेते और फिर कुछ सोचने लगते—मैं तो उनके स्वभाव को भली भाँति जानती थी—मैंने जान लिया कि वे कुछ कविता करते होंगे . एक बेर और मैंने उनको भली भाँति देखा और अचांचक उनकी भी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी , वे मेरी ओर एक टक देखने लगे और मैं भी अनिमिष नैनों से उन्हें निहारती रही .

"भए बिलोचन चारु अचंचल ।
मनहु सकुचि निमि तज्यो दृगचल ॥"

यद्यपि मैं उन्हें प्रतिदिन देखती थी तौ भी उस दिन उनके मुखार-विंद की कुछ और शोभा रही मैंने भी उनके निहारने से जान लिया कि वे भी आज मुझे किसी और भाव से देख रहे हैं , तौ भी मेरा जी विश्वस्त था . मैं उनके स्वभाव को जानती थी और परिचित भी थी . मैंने और कोई चेष्टा नैन या कर से नहीं की, स्तब्ध सी वहीं खड़ी रही, पर हृदय में उस समय अनेक प्रकार के भाव आए, कुछ लज्जा भी हुई दृष्टि नीचे कर ली . फिर सिर उठाकर उसी जगन्मोहन को देखा . उनको देखकर मुसकिराई . वे भी मेरे हृदय के भाव अपने हृदय में गुन मुसकिरा गए. मेरी बहिनें सत्यवती और सुशीला यद्यपि मेरे साथ वहीं थीं पर कुछ न समझ सकीं—हाँ, वृंदा जब आई मेरी तन की बुरी दशा देख पूछने लगी .

"श्यामा—आज तेरे शरीर की यह दशा कैसी हो गई . तू तो कभी इतना बिलंब अटा पै नहीं करती थी आज क्या हो गया . देख मुझसे मत छिपावै , मैं सब अंत में जान ही जाऊँगी"—इतना कह उसने मेरी ओर देख श्यामसुंदर की ओर देखा .

"कुछ तो नहीं—मेरी क्या गति होगी . जो गति रोज की सोई

चित्त रहना काव्यकला ने हृदय का कपाट खोल दिया था ये सब बातें इनके ललाट ही से जान पड़तीं थीं . सुडौल अंग अनंग के आलय थे चिकने और काले काले बाल युवतियों के मन को काल थे मधुर मधुर बोली हमारी हमजोली के मन को नवनीत सरीखा पिघला देती थी . इनकी चितवन से प्रेम और विश्वास प्रकट होते थे बड़े गंभीर और धीर-नीर के सदृश स्वच्छ निष्कपट चित्त असत्य वित्त के आगार— मुझे बहुत भले जनाते थे . कोमल कमल से कर—छोटी छोटी दाढ़ी और मूछें जवानी के आगम को सुचाती थी, विद्या और कविता तो इनके जिह्वा पर नाचती थी और इस दोहे को सार्थ करनेवाले इनमें सभी गुण थे—

"तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रति रंग ।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग—॥"

देश देशांतर के पंडित और गुणी इनका नाम सुयश और दातृत्व सुन स्वयं आते और उनका यथोचित कालानुसार मान दान भी होता . इनका नाम श्यामसुंदर था . इनकी वय केवल २६ वर्ष की थी ये हमारे परोसी थे और मुझसे इनकी कुछ कुछ जान पहिचान भी रही. इस समय मेरी भी वय ठीक १४ की थी पर विद्यालाभ के कारन सभी बातें कुछ कुछ समझ लेती थी

श्यामसुंदर मेरे परोसी होने के हेतु दिन में दो चार बार भेंट करते मैं भी उन्हें अपना हितू और सहायक जान प्रायः बोलचाल करती थी . एक दिन प्रातःकाल को जब मैं स्नान करके अपने (नी) अटा पर खड़ी बाल सुखा रही थी श्यामसुंदर अपने कविताकुटीर के तीर बैठा कुछ बना रहा था . मुझे नहीं मालूम क्या लिखता था द्वार पर लता छाई थी और उसके पत्ता के फैलाव से उसका मुख कुछ ढका और कुछ प्रगट था. ऐसा जान पड़ता था कि उस मंडप में अकेला गुलाब का फूल खिला

हो . मैं उनकी ओर सहज भाव से देखने लगी . वे नीचे मस्तक किए कुछ गुनगुनाते थे . कभी ऊपर देख कुछ लिख लेते और फिर कुछ सोचने लगते—मैं तो उनके स्वभाव को भली भाँति जानती थी—मैंने जान लिया कि वे कुछ कविता करते होंगे . एक बेर और मैंने उनको भली भाँति देखा और अचांचक उनकी भी दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी . वे मेरी ओर एक टक देखने लगे और मैं भी अनिमिष नैनों से उन्हें निहारती रही .

"भए विलोचन चारु अचंचल।
मनहु सकुचि निमि तज्यो दृगंचल ॥"

यद्यपि मैं उन्हें प्रतिदिन देखती थी तौ भी उस दिन उनके मुखार-विंद की कुछ और शोभा रही मैंने भी उनके निहारने से जान लिया कि वे भी आज मुझे किसी और भाव से देख रहे हैं . तौ भी मेरा जी विश्वस्त था . मैं उनके स्वभाव को जानती थी और परिचित भी थी . मैंने और कोई चेष्टा नैन या कर से नहीं की, स्तब्ध सी वहीं खड़ी रही, पर हृदय में उस समय अनेक प्रकार के भाव आए, कुछ लज्जा भी हुई दृष्टि नीचे कर ली . फिर सिर उठाकर उसी जगन्मोहन को देखा . उनको देखकर मुसकिराई . वे भी मेरे हृदय के भाव अपने हृदय में गुन मुसकिरा गए. मेरी बहिनें सत्यवती और सुशीला यद्यपि मेरे साथ वहीं थीं पर कुछ न समझ सकीं—हाँ, वृंदा जब आई मेरी तन की बुरी दशा देख पूछने लगी .

"श्यामा—आज तेरे शरीर की यह दशा कैसी हो गई . तू तो कभी इतना विलंब अटा पै नहीं करती थी आज क्या हो गया . देख मुझसे मत छिपावै , मैं सब अंत में जान ही जाऊँगी"—इतना कह उसने मेरी ओर देख श्यामसुंदर की ओर देखा .

"कुछ तो नहीं—मेरी क्या गति होगी . जो गति रोज की सोई

आज की . विशेष आज क्या हुआ जो पूछती है—" इतना कह मैं अचंभे में आ उसकी ओर देखने लगी

"सुन श्यामा—आज तेरे मुख पर कुछ और पानी है . केश छूटे और आँखें लाल सजल सी दिखाई देती हैं—तन बदन की सुधि है कि नहीं . देख ओचर कहाँ और सिर का घूँघट कहाँ है"—वृंदा ने कहा .

मैं इस व्यवस्था को सच्ची जान लज्जित हो गई पर जहां तक बन पड़ा लाज को लुकाया और उत्तर सोचने लगी उत्तर सोचने में तो सब भेद खुल ही जाता . झपट कर सुशीला को गोद में उठा चिढ़ी हुई सी बातें करने लगी "अभी गिर परती तो क्या होता इसी के मारे तो मैं कभी अटारी पर ज्यादा देर नहीं लगाती यह बुरी कही नहीं मानती जब देखो अटा के बाट ही पर बैठती है . गिर परेगी तो खाट पर धरी धरी रोवेगी" इतना कह सुशीला के गाल पर एक चटकन जड़ी कि वह रोने लगी . वृंदा ने झट उसे मेरी गोद से ले लिया और चूम चाट उसे खूब सा पुचकारा . मेरी ओर तिउरी चढ़ा और नाक को सकोर "क्यों मार दिया" ऐसा कह लंबी हुई, . अपने प्रश्न का उत्तर भी न लिया . मैंने जाना बलाय टरी, अच्छा हुआ . सत्यवती के साथ वृंदा के पीछे ही उतर गई ".

मैंने टोका "वाहरी श्यामा १४ वर्ष में जब तुम इतनी चतुर थीं तब आगे न जाने क्या हुआ होगा . पर ढिठाई क्षमा करना मैं शुद्धभाव से तुम्हारी बुद्धिमानी की प्रशंसा करता हूँ फिर क्या हुआ"—श्यामा ने उत्तर दिया "दिन दिन नूतन नूतन शाखा वृक्ष से निकली . उस दिन वृंदा चुप रही . न जाने सचमुच भूल गई वा चतुराई से उसको भुलावा सा दे भुलाये रही, पर कभी कई दिनों तक उस प्रश्न की चर्चा तक ओठों पर न लाई . श्यामसुंदर तो फिर उस समय सब बातें ताड़ गया और मुसकिरा कर हट दिया . मध्याह्न के समय उसने सत्यवती को बुलाकर

बहुत प्रीति दिखाई . फलादिक भोजन कराए और नवीन वस्त्र देकर एक सादी सी अँगूठी सत्यवती को दी. सत्यवती अपना भाग खुला जान बड़ी प्रसन्न हुई. घर आ पिता जी से सब कहा . श्यामसुंदर की उदारता कौन नहीं जानता था. दादा भी प्रसन्न हुए, और हम लोगों के श्यामसुंदर से समागम करने में तनिक रोक टोक नहीं करते थे . वरञ्च और भी हम लोगों को उनके पास आने जाने और गुण सीखने की आज्ञा दी. हम लोग सबके सब जब घर के काम से अवकाश मिलता उनके घर आया जाया करते श्यामसुंदर ने बड़ी दया और मया दरसाई . हमलोगों की दरिद्रता दूर कर दी हमलोगों का कई बार बुला बुला के न्यौता करते अनेक भाँति की कथा सुनाते और अनेक गुन और कला भी कभी कभी बताते . काव्य और नाटकों की छटा बताई . सिद्ध पदार्थ का विज्ञान दरसाया रेखागणित और बीजगणित की परिपाटी सिखाई—मानों मेरे हृदय में विद्या का बीज बो दिया चित्रकारी पर भारी वक्तृता करी . सरगम का भाव बतलाया . मेघ और इन्द्र की विद्या सिखाकर इन्हीं के सजीव पुरुष या महेन्द्र होने का भ्रम मिटाया . मैं बिचारी क्या जानूँ—ए सब बातें . यद्यपि ये सब बातें उन्होंने किसी विशेष पुस्तक से नहीं पढ़ाई तौ भी जब जब उन्हें अपने काम धाम से समय मिलता मेरे शून्य और अँधेरे हृदय में ज्ञान का बीज और दीप स्थापन करते. जितने विषय मैंने श्यामसुंदर से सीखे उतने पाठशाला में भी नहीं सीखे थे . हमारी शाला के गुरु यद्यपि बड़ी कृपा करके सिखाते तौ भी मुझे इतना चाव उनके मुख से कोई बात सीखने में नहीं हुआ जब श्यामसुंदर कोई विद्या का विषय कहता उसके मुख से मानो फूल झरते थे . जब कोई मेघदूत सा काव्य या शकुंतला सा नाटक सुनाता मेरे कानों में अमृत की धारा सी चुवाता . वृन्दा भी मेरे साथ रहा करती और उसे मुझसे अधिक उनकी बातों को सुन रस का अनुभव होता . वह तो कभी-कभी छेड़ भी दिया करती थी पर सत्यवती और सुशीला खेल में लगीं रहतीं थीं .

यह बात नैसर्गिक है . इतनी थोरी उमरवाली लड़की ऐसी ऊँची बातों में मन नहीं लगा सकतीं . यह उमर ऐसी ही है जिसमें सिवाय झुनझुना लट्टू-गुड़ियों के और कुछ नहीं सुहाता .

जब जब मेरी और उनकी चार आखैं होतीं मेरा बदन कदंब का फूल हो जाता—आँखों में पानी भर आता और तन में पसीने के (की) बूँद झलक उठते (ती) . जाँघैं थरथरा उठतीं बदन ढीले (शिथिल) पड़ जाते और बसन शिथिल हो जाते थे श्यामसुंदर भी कभी कभी कहते कहते रुक जाता—रसना लटपटा जाती . और की और बात मुँह से निकल परती . फिर कुछ रुक कर सोचता और कथा की छूटी डोर सी गह लेता . चकित होकर वृंदा की ओर देखता कि कहीं उसने यह दशा लख न ली हो . पर वृंदा बड़ी प्रवीन थी . बीच बीच में मुसकिरा जाती . सत्यवती भी कभी कभी कान देकर कोई कहानी सुना करती . ऐसे समय प्रतिदिन नहीं आते थे पर जब जब बैठक होती तीन चार घंटे से कम की कदापि नहीं होती थी . क्या करें श्यामसुंदर को अपनी जमींदारी के कारबार से इतना अवकाश मिलना दुस्तर था . धीरे धीरे उसका प्रेम बढ़ चला मेरे जी में प्रतिदिन प्रेम का अंकुर जम चला सोचने लगती कि कब उसे देखूँ. जब तक वह अपने कुटीर में बैठता किसी न किसी ब्याज से मैं उसे देख लेती . वे भी मेरे लिए मेरी देहरी पर दीठि दिए ही रहते . मेरे पैर की आहट को सुन तत्क्षण पलक के पाँवड़े बिछा देते . मेरे मुख को देख चकोर से प्यासे नैनों को बुझाते— पर यह सब ऐसी गुप्तता से हुआ कि घर के बाहर के बरच परोसी भी कभी न जान सके . हाँ सेवकों के कभी कभी कान खड़े हो जाते—क्यौं कि रात दिन का झमेला एक दिन खुल ही पड़ता है—"अति संघर्ष करै जो कोई । अनल प्रकट चंदन से होई"—यह कहावत है . माता पिता का कुछ इस बात पर लक्ष्य न था—और मेरा भी मन का भाव अभी तक स्वच्छ था, पर बीज इसका बोया गया था और अभिनव अंकुर भी

निकल चुके थे . मैं यद्यपि उनसे ढीठ थी तौ भी मान्य और पूज्य शब्दों को छोड़ कभी और प्रकार के वचन न कहे . उनका काम सब काम को छोड़ करती . जब कभी वे प्यासे होते और अपनी दासी को भी इंगित करते तो मैं ही उठकर शीघ्र उनको जल ला देती ईश्वर जाने वे उस जल को अमृत या अमृत का दादा समझते थे, पर उनके प्रति रोम से यही प्रकट होता कि वे प्रेम के पथिक और मुझ पर दयालु हैं .

इस प्रीति की रीति को कहाँ तक कहूं . यह हहमारी साँपिन सी काटती है किसी मन्त्र में सामर्थ नहीं कि इसका विष उतारै . एक दिन श्यामसुंदर भोजनोत्तर अपनी शय्या को सनाथ कर रहे थे कि सत्यवती किसी काम के लिए उनके पास ठीक दुपहर को गई और उनकी आज्ञा से उन्हीं के निकट बैठ गई . कुछ काल तक इधर उधर की बातें हुईं, फिर उन्होंने मेरी चर्चा निकाली . सत्यवती बहुत कम बोलती थी उन्होंने जो जो बातें उससे पूछीं उनका यथार्थ उत्तर न पाया क्योंकि सत्यवती एक तो इतनी पुष्ट बुद्धि की न थी और दूसरे उसको लाज भी थी . हँस कर रह जाती . हार मान श्यामसुंदर ने एक दोहा मुझे लिख भेजा . वह यह है—

जो माला अलि कुतलन अँगुरिन सों निरवार।
सो चुराय कै मो हियो गई कटारी मार॥

इस दोहे को उसने बड़े डर के साथ एक कागद के टुकड़े पर लाल लाल अक्षरों से लिखा और कमल के कोष में रखकर सत्यवती के हाथ भेज दिया . सत्यवती ने मेरी माता सुरला के समक्ष देकर कहा "जिजी ! इस कमल का छतना कैसा पीला है टुक देख तो सही" इतना कह नैन मटकाए. मैंने पूछा "यह कहाँ से लाई है ?" उसने कहा "श्यामसुंदर ने बड़ी कृपाकर यह फूल तुझे भेजा है और मुझसे कहा कि श्यामा को देकर यह कहना कि "यह मेरा हृदय कमल का कोष है मैंने श्यामा को समर्पण कर दिया है" इतना कह चुप हो गई मैंने जान लिया कि इसमें

से सब कुछ जान गई थी पर मैं मौन रही. मान गहि लिया और मन चाहता कि कुछ और कहे पर लाज और स्वभाव के वश कुछ नहीं कह सकी. एक दिन वे अचानक मेरे द्वारे आन कढ़े. मैं अपनी अटा पै ठाढ़ी रही—वे मो तन देख हँस पड़े. पर मैं लाज के मारे भौन के भीतर भाज गई. उसी दिन से इन कुचाइन चवाइयों ने मिलि के चौचद पारा. मैं क्या करूँ इस विषय को जभी मन में करो तभी अल्हन हो जाता है. मैंने बहुतेरा चाहा कि छिपे पर मर्म सखियाँ कभी कभी ताना मार ही देती थीं. नहाते, आते, जाते सभी मुझे वंक दृष्टि से देखतीं—पर मैं जान बूझ कर अजान बन जाती—पर वे क्या इस बात को न समझ जातीं होगीं. इस गाँव में एक से एक पढ़ी थीं. अब सुनिए दूसरे ही दिन नौ बजे दिन को सुशीला के हाथ सत्यवती को बुलाकर मेरे पत्र का पलटा उन्होंने दिया. मैंने अपने धन्य भाग मनाए, और उसे पढ़ने लगी. उसमें यह लिखा था.

"आज पहिला दिन है कि मैं तुमको लिखता हूँ इसी से भूलचूक होगी क्षमा करना. पहले तो मैं इसी बात में अटक गया कि तुम्हें क्या कह के लिखूँ. जो मैं तुमको भली भाँति जानता हूँ और बहुत दिनों की(का) परिचय भी है तो भी एकाएक तुम्हें जैसा जी चाहता है लिखने में सकुच लगती है पर मुझे विश्वास है कि तुम सब समझ लोगी, और भी इसका व्योरा निपटाना तुम्हारा ही काम रहैगा. जब तक मुझे तुम आप लिख कर कोई राह न बताओगी मैं तुम्हें सामान्य रीति पर ही लिखूँगा. तो बस—तुम्हारे पत्र के पढ़ते ही मैंने तुम्हारी बुद्धि की सराहना की मुझे आशा न थी कि तुम पहली ही बेर इस ढिठाई के साथ लिखोगी पर यह मार्ग ही ऐसा है कि कोई क्या करै. तुम्हारा पत्र तुम्हारे अंतरंग और मनोगत का सच्चा प्रमाण है. इस विषय में मुझे और कुछ नहीं कहना क्योंकि तुमसे परिचित सुजन से और ढिठाई का कहना मेरा ही अपराध गिना जायगा—ढिठाई—की ढिठाई [illegible]

करेगा और भी जितना अवकाश तुम मुझे कहने का दोगी उतना ही मैं भी कहूँगा—क्योंकि "जहाँ तक खाट होगी पाँव भी वहीं तक फैलेंगे"—यह तो रहे—पर "प्रीति"—हाँ—"प्रीति"—इसके क्या अर्थ—और "निबाहने" के क्या अर्थ है, यह जरा मुझे बतावो . ये दोनों शब्द मैंने आज तक किसी शब्दचर्ण में भी नहीं पाए .

तुम तो अवश्य ही जानती होगी तभी तो तुमने इन्हें लिखा भी है, पर जब तक तुम इन शब्दों के लक्षण न बतावोगी मैं कुछ उत्तर नहीं दे सक्ता . आज तक मैंने जो "प्रीति" के अर्थ समझे हैं वे ये हैं "प्रीति" के अर्थ "टेढ़ी" और "निबाहने" के अर्थ "अनहोनी" के हैं यदि तुम्हारे कोप में भी यही अर्थ हों तो मेरे अर्थ को पुष्ट करो नहीं तो स्याही फेर देना . मैं अपनी छोटी समझ से उस तुम्हारी पंक्ति का छोटा सा उत्तर देता हूँ के (कि) "यह सब तुम्हारे ही हाथ है." सत्यवती के हाथ जब मैंने तुम्हें कमल भेजा था तब उसने क्या कहा—याद है ? उसने कहा होगा कि "यह—ने हृदय कमल का कोप, तुम्हें समर्पण किया है"—क्यों—यही बात है न—यदि यही हो तो इसको समझ लेना, मुझसे अधिक नहीं लिखा जाता . मेरा हाथ कुछ और लिखने में काँपता है . क्षमा करना .

"हमने दर्शन नहीं दिए"—ठीक है तुम्हारे आज काल दिन हैं कह लो जो चाहो, पर उस दिन कौन था जो चार घड़ी तक..... के पास खड़ा रहा और आपने एक बार भी आँख उठाकर नहीं देखा. क्या जाने आप न रहीं हों, तो बस यह मेरी ही दृष्टि का दोष है . क्या इससे भी और कुछ प्रमाण लोगी ? सुना चाहो तो कहें, नहीं तो बस हो गया .

"तुम्हारा मेरा समागम हुआ करता तो समय कट जाता, और तुम्हें सिखाने में मेरा भी जी लगता, पर इस दुखदाई रीति से सभी हारा हैं परवश सभी सहना पड़ता है .

"यदि तुम मुझे इतना चाहती हो कि जैसा तुमने अपने करकमलों

से लिखा है तो बस रहने दो, मैं इस विषय में कुछ नहीं कहता. यह आपकी सहज दया है, मन में आवै तो दो डड़ीचैं लिख भेजना, हाथ जोड़ता हूँ".

द्वापर कृष्णयुग तुम्हारा शुभचितक
फाल्गुण श्यामसुंदर"

यह पत्र मेरे कलेजे मे बान सा लगा. मैंने इसको कई बार बांचा और मन ही में समझ गई. क्षणभर तनकी सुधि भूल गई. मन में बहुत सी बातें सोचने लगी. श्यामसुंदर उत्तर की आशा लगाए रहे जब मैं नहाने जाती मेरे पीछे आप भी नहाने जाते. कहते कुछ नहीं पर ध्यान उनका मेरे पर लगा रहता. इधर उधर देखते पर छिन छिन पै टेढ़ी दृष्टि करके मुझे भी देख लेते. जब मैं घर लौट जाती वे भी दूसरी ओर से अपने कुटीर को चले जाते पर ऐसा जान पड़ता कि मेरे ध्यान से क्षण-भर विलग नहीं रहते. मैंने कुछ उत्तर न दिया क्योंकि मुझे ज्ञान न था कि क्या लिखूँ. अंत को वे बीमार हुए. ज्वर आने लगा. एक तो बड़े आदमी के लड़के दूसरे सर्वदा सुख ही में रहे इससे बड़े सुकुमार थे मुरझा गए. ज्वर ददसारे ने उन्हें थोड़े ही दिनों में निर्बल कर दिया, पर औषधी अच्छी की. एक या डेढ़ सप्ताह में चंगे हो गए. चलने फिरने लगे, खाने पीने लगे. अब कुछ कुछ बल भी आने लगा पर भली भाँति अच्छे नहीं हुए. इस ग्राम के जलवायु ने उन्हें बहुत अशक्त कर दिया था. वैद्य ने उन्हें मति दी कि एक मास तक दूर देश की यात्रा करो नहीं तो और शरीर बिगड़ैगा. वैद्य को उन्होंने हामी भर दी पर मुख पर पीरी आ गई उन्हें मेरा वियोग सहना दुस्तर था. छन भर मेरे बिना रह नहीं सकते थे, पर शरीर की भी रक्षा मुख्य थी. थोड़ी देर में वैद्य के जाने पर उन्होंने सत्यवती को बुला के कहा कि "श्यामा से मैं कुछ कहूँगा तू जा उसे बुला ला" यह सुन

सत्यवती ने आकर मुझसे कहा. मैने सोचा आज क्यों बुलाते हैं. कुशल तो है तौ भी जाने के लिए तत्पर हुई. सफेद कोसे की सारी पहन, और एक छोटी सी माला गले में डाल कर चली. अपनी देहरी पर जाकर ठठक गई, फिर मन में सोच आया कि कहाँ मुझे बुलाया है और मैं कहाँ जाती हूँ, यह बात तो मैने सत्यवती से भी नहीं पूछी थी. कहां वे टीक ठिकाने की उठ चली. हाय रे भगवान् बड़े कठिन की बात है—मैने बड़ी भूल की थी. मै बाहर निकल कर कहाँ जा ठाढ़ी होती. ऐसा सोच विचार के फिर लौट आई. सत्यवती से कहा "मुझे कहाँ बुलाते हैं—जा पूछ आ" सत्यवती गई और एक क्षण में आकर कहा कि "उन्होंने तुझे कविताकुटीर में बुलाया है. अभी दुपहरी का समय है—कोई नहीं है चली आ"—मैं बाहर निकली और श्यामसुंदर के कुटीर के तीर ज्योंहीं पहुँची श्यामसुंदर उठकर बाहर आए और मेरा हाथ बड़े चाव से पकड़कर भीतर ले गए. ले जाकर मुझे बड़ी कोमल कुरसी में बैठाया और वे भी मेरे सन्मुख एक हाथ के (की) दूरी पर बैठ गए यह कुटीर बड़ा मनोहर था. इस कुटीर में चारों ओर के द्वारों पर माधवी लता छाई थी, चमेली की वेली अपने लंबे लंबे हाथ पसारे माधवी से मिल. कर मुसकिराती थी. गुलाब भी अपनी अलौकिक आब फूलों के मिस दिखाता था. विलायती किते की कुरसियाँ मखमल और रेशम से मढ़ी करीने से धरी थीं. गोल चौपहल और अनेक आकार के मेज जिन पर रंग विरंग की बनातें पड़ी थीं बीच में रक्खे थे. मनोहर और विचित्र चित्र पूठों की पुस्तकें अच्छी रीति पर धरीं थीं. सामने और आजू बाजू अलेमारियाँ जिनमें सैकड़ों पुस्तकें अनेक विद्याओं को सिखानेवाली भरीं थीं—शोभित थी. बीच में एक गोल छोटा सा मेज धरा था, उस पर श्यामसुंदर का चित्र हाथी-दाँत की चौखट में जड़ा धरा था इसको देख सभी दंग हो जाते. उसमें श्याममुंदर हीरे का बड़ा सिरपेच बाँधे जिसमें बड़े बड़े बहुमूल्य के पन्ने ए

दिए—हाथ में कड़वाल लिए बैठे थे . कंठ में बड़े मोतियों का कंठा—और मयूरहार उर में झूलता था . पछाहीं पगड़ी अड़ी थी . कानों में मोती के बाले कपोलों पर झलकते थे . चंद्रहार भी मन को चुराए लेता था . मैंने तो आज तक ऐसे बहुमूल्य रत्न कहीं नहीं देखे थे . कपटनाग की यद्यपि पुरानी गद्दी थी पर ए लोग सदा सादी चाल से रहे और आश्चर्य नहीं कि इनकी चालीसी की चालीसी श्यामसुंदर के मुकुट के एक मणि के भी मोल को न पाती इनके इस चित्र में मुख से वीरता और माधुर्य्यता (माधुर्य) दोनों पाई जाती जो इनके कुल और काव्य-कुशलता के हेतु थी. नेत्रों से प्रेम टपकता था. ललाट से अशेष विद्वत्ता जान पड़ती थी , उस समय ए दो और बीस बरस से अधिक न रहे होंगे . डाढ़ी पर एक एक अंगुल बाल थे . यह छवि मेरे जी में गड़ गई—और शोच किया कि उस समय मुझसे इनसे क्यों परिचय न हुआ .

इसी गोल मेज के किनारे एक और चौपहल मेज धरा था . इसपर सुंदर काले काठ की मजूषा में एक सुरीला बाजा रक्खा हुआ था . इस अरगन बाजा को श्यामसुंदर जब मौज होती बजाते और सुनाते . गाने बजाने का भी इनको व्यसन था . उसी कुटीर के पश्चिम भाग में एक परदा पड़ा था और उसके उस तरफ उनका पलंग बिछा था . एक नजर में जो कुछ देखा तुमको सुनाया—अब हमारे भेट का हाल सुनो . श्यामसुंदर मुझे देखकर सब काम छोड़ वार्त्तालाप करने लगे . उन्होंने पूछा "कुशल तो है—" मैंने उत्तर दिया—"आपके रहते हमें अकुशल कैसी ? आप तो भले हैं ?"

(साँस लेकर) "हाँ बहुत अच्छे और अब तुम्हें देख और भी अच्छे हो गए—तुम तो देखतीं थीं मैं कैसा बीमार हो गया था . वैद्य ने ओषधी की, अब अच्छा हो गया . पहले से कुछ अच्छा हूँ—पर एक वज्र पड़ा" इतना कह कर एक लंबी सांस ली .

मैंने कहा—"क्या ? कुशल तो है—ईश्वर ऐसा न करे—" मैं तो कुछ जान गई थी कि वही यात्रा की बात होगी, पर मुझे भी उनके बिना कैसे चैन पड़ता यही सोचती रही .

श्यामसुंदर ने उत्तर दिया—"वजू यही कि अब कुछ दिनों के लिए हमको तुमसे विलग होना पड़ेगा . वैद्य ने मेरे शरीर की अवस्था देख कर कहा है कि जलवायु दूसरे देश का सेवन करना होगा नहीं तो शरीर और भी बिगड़ जायगा. शरीर की रक्षा मुख्य है—तो अब मैं दो एक दिन में जाऊँगा. तुम्हारा तो मेरे साथ जाना नहीं हो सक्ता और इधर तुम्हारा वियोग . अब नहीं मालूम क्या होगा"—इतना कह आँखों में आँसू भर मेरे दोनों हाथों को अपनी छाती से लगा लिया और चुप हो गये . सिसकी भर रोने लगे और फिर कुछ भी न कहा .

मैंने उनके नेत्र आंचर से पोंछ दिए और उनके सिर को छाती से लगा कर उन्हें समझाया . पर उनके नैन सावन भादों हो गए थे . सावन भादों की सरिता कहीं रुकती है . उनके नैनों से ऐसा धारा-प्रवाह उमड़ा कि मेरा आंचर भींज गया . मैंने उसास ली और रोने लगी . प्रीति की नदी उमड़ आई मैंने मन में कहा कि अंत को यही होता है—पर अब तो लग ही गई थी छूटती कैसे. मैंने श्यामसुंदर से कहा "कुछ कहोगे भी कि बस रोते ही रहोगे . मुझे भी तुमने अपने दुःख दिखाकर दुःखी बना दिया . तो अब तुम्हें कौन समझावै"—"मुझसे क्या पूछती हो . मैं तुम्हें छोड़ कैसे जा सकूँगा—जिसको नैन प्रतिदिन देखते थे उसको अब बहुत दिनों तक न देखेंगे . अधिक कहता हूँ तो अभी-द्वारे पर भीर लग जायगी, और समय भी अधिक इसमें नहीं लगाना चाहिए . तो सुनो, मेरा जाना तो अब ठीक हो चुका . इस शरीर के लिये जाना ही पड़ा . मेरी तुमसे यही विनती है कि तुम इस दीन और मलीन अपावन जन को मत भूलना . मैं तुम्हें अपना पता लिखकर कई लिफाफे

छिप जाता हूँ तुम इसके भीतर पाती लिखकर बंद कर देना और मेरे विश्वास-पात्र हरभजना को दे देना वह मेरे पास पहुँचा दिया करै या तो डाक द्वारा भेजा करैगा और मेरे भी उत्तर तुम्हें उसी के द्वारा मिला करैंगे—पर यह मेरी बारबार विन्ती है कि भूलना कभी नहीं और एक बेर प्रतिदिन मुझ दीन का स्मरण करना. यदि मेरी कोई (किसी) सहायता का कभी काम पड़े तो मुझे खबर पहुँचाने में विलंब न करना—यदि मेरे बिना कोई काम ऐसा आन पड़े कि न हो तो मैं सब छोड़ कै आ जाऊँगा. दया रखना—देखो—पर बस, अब लोग आवैंगे तो तुम जाव— हायरे वज्र हृदय! फट नहीं जाता और उलटा "जाव" ऐसे वचन कहवाता है"—इतना कह फिर भी आँखें भर लीं.

मैं तो निःसह होकर श्यामसुंदर के अंक में गिर पड़ी. श्यामसुंदर ने मुझे सम्हार लिया. यदि वे सहारा न बन जाते तो मैं कबकी भूमि पर गिर पड़ती. श्यामसुंदर ने अपने वस्त्र से लोचनों को पोंछ उरई के व्यजन से व्यजन करने लगे. गुलाब जल की पिचकारी मेरे नैनों में मारी और मुझे चुम्बनों से आच्छादित कर दिया. मुझे कुछ सज्ञा हुई. मैंने अपनी सकपकानी दृष्टि उनके मुखारविंद पर फेकी. बरौनी में मेरे आँसू लटके थे. उन्होंने फिर भी इस बार पलकों का चूमा लेकर उन्हें पोंछ दिया और बोले, "तुम क्यौं रोती हौ आज सब प्रेम खुल गया, न तो तुम हमसे दुरा सकी और न मैं ढांक सका. कैसे ढांकता, प्रेम क्या सूजी है जो छिपै, पर यदि हमी तुम जानें तो अच्छा है. प्रीति प्रकट नीकी नहीं होती." इतना कह उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और फिर बोले—"आज यदि तुम्हारी आज्ञा पाऊँ, तो "प्यारी"—कह के तुम्हें टेरूँ." मैं चुपकी रही. "तुम कुछ देर तक मौन रहीं, मुझे ढाढ़स हुआ, मैं तुम्हें अवश्य प्यारी कहूँगा, क्षमा करना तो—प्यारी! प्रानप्यारी! मैं तुम्हें जीसे चाहता हूँ मोह करता हूँ—सुंदरी मेरे हृदय में तेरी गाढ़ी प्रीति भरी है. जगन्मोहिनी! मैं तेरे मूरति की पूजा करता हूँ. तू

मेरी इष्ट देवी है और मैं तेरा भक्त हूँ . मैंने तुम्हारी मूर्त्ति की पूजा उसी दिन से आरंभ की थी जिस दिन पहले तुम्हें उस दिन अटारी पर बार बगराते देखा था ." इस वाक्य को भली भाँति बल दे के कहा, वह कहन मेरे हृदय में गड़ गई—इतनी गहिरी कि अद्यापि मेरे हृदय के उत्तर दायक तार झनझनाते हैं . मैंने भी उन्हें कहा "प्यारे जो हाल तुम्हारा था सोई मेरा भी था पर गुप्त ही रखना पड़ा, आज अच्छा हुआ जो दोनों के जी की सफाई हो गई ." इतना सुनाय मैंने उनके कर-कमल पकर अपने हृदय से लगाए—उनने मेरे हाथ को ले अपने ओठों से लगाया. मैंने झींका भी नहीं, मेरा हृदय तनिक भी उस अपूर्व आनंद को स्मरण कर न मुड़ा और मुझे उस समय ऐसा सुख हुआ जो मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था . ज्योंही मैं उस समय की तरंगों के बल से आगे झुकी उनका अनुपम मुख निरखने लगी—और उनके काले नैनों की गंभीरता में उनके उस प्रेम को बाँचने लगी जो अभी उनके अधर पल्लव से निसरा था—त्योंही उन्होंने मुझे गलबाहीं देकर हृदय से लगा लिया—हम लोगों के अधर मिले और बड़े विलंब में चुम्बन का अनुकरण शब्द निकला . उन्होंने विदा दी और मुझे इस प्रतिज्ञा पर छोड़ा कि "चलते समय एक बेर और दिखाई देना ."

आह ! उस क्षण का सुख कैसे कहूँ ये वे भाव थे जो मेरे गंभीर हृदय के कुंड से अमृत की नाईं झरने लगे थे . यह मेरा शुद्ध और पावन प्रेम था जो श्यामसुंदर के लिए अंकुरित हुआ था . मैं उसे टटोल भी चुकी थी . जान भी गई कि यह ऐसा ही था . 'प्रेम'–प्रेम जिससे इन्द्रियों से कुछ संबंध नहीं–प्रेम–जिस पर इंद्रियों का धक्का नहीं लगा था, प्रेम—जो मेरे (मेरी) आत्मा के दृष्टिगोचर हो चुका था .

"मैं घर गई, बैठी उठी, पर श्यामसुंदर की झलक आँख की ओट न हुई . फिर भी इच्छा हुई कि जाकर भेंट करूँ पर सोचा कि बार बार

ऽगी . इधर भी मेरी धूर ही धूर दिखाती थी . कहावत है कि "दिलों पर खाक उड़ती है मगर मुँह पर सफाई है" अत को मैंने अपने जी से यह दोहा पढ़ा—

> वह गए बालम वह गए नदी किनार किनार।
> आप गए लगि पार पै हमैं छोडि मझधार ॥

स्नान करके घर आई घर के कुछ काम न अच्छे लगे . माँ से कहा 'मा आज मेरा माथा पिराता है" मा ने पूछा "क्यौं"— मैंने उत्तर दिया 'क्या जानूँ—शरीर तो है" माँ बोली "तौ जा सो रह"—यह तो मेरे ही मन की कही . मैं शीघ्र जा सेज पर सो रही और मूड को ढाँक खूब रोई—भूख प्यास सब भूल गई . तन से मन निकल कर मनमोहन के

में हूँ तक न निकालूँगी . मार मार जार डार जैसा मैंने उन्हें जराया है तू भी मुझे जलाकर कवैला कर दे-हाय रे ईश्वर--हाय हाय रे करम-क्या मैंने सब धरम बहा दिया . किस भरम में पड़ी शरम भी नहीं आती—हा हा" ऐसा विलाप करते करते गिर पड़ी . सत्यवती और वृंदा ने सम्हार लिया . अपनी ओली में बैठाकर मुख पोंछा हवा करने लगीं . चूमा लिया, पर मैं तो इस लीला को देख दंग हो गया . स्तब्ध होकर भीति की सी चित्रौर बन गया; अनिर्वाच्य हो गया . आश्चर्य करने लगा कि ऐसे मनोहर शरीरवाले भी जो केवल पुण्य के पुंज हैं, दैहिक, दैविक और भौतिक तापों की ताप में तपते हैं आश्चर्य है कोटिगार आश्चर्य का आस्पद है, मैंने कुछ सुरीली तानें भरीं, श्यामादेवी की आँखें खुलीं . वृंदा बिजना झलती थी . वह इन सब बातों की प्रत्यक्ष देखने वाली थी सब कुछ समुझ बूझकर सासें भर भर के रह गई . देवी को संज्ञा हुई, मैं हाथ जोड़कर बोला

"कमलनयनी ! तू क्यों इतनी अधीर हो गई . अभी तो कहानी पूरी भी नहीं हुई इतने ही में ऐसा हाल हुआ, पूरी होते होते न जाने तेरे प्रान बचेंगे कि नहीं—वृंदा तनिक देवी को समझा दे शोच न करै, क्या ऐसे ऐसे जनों को भी दुःख का लेश चाहिए"

श्यामा देवी गद्गद स्वर और स्खलित अक्षर से बोली "सौम्य ! तुम बड़े सभ्य हो . यह स्थल ही ऐसा है कि यदि तुम इस सब वृत्तांत के साक्षी होते तो न जाने तुम्हारी कौन सी गति होती, पर तुम्हारा चित्त इस कहानी को पूरी कराने में लगा है तो लेव सुनो . मैं रोते गाते सब कुछ कह सुनाऊँगी" इतना कह सुखसे सिंहासन पर बैठ गई. चंद्रमा की प्रभा ने मुख कोकनद को विकास कर दिया था . दंत की छटा मंद मंद कौमुदी में मिली जाती थी . वृंदा पंखा झलने लगी, सत्यवती ने पान का डब्बा खोलकर सामने धर दिया और सुशीला रात बहुत हो जाने के

लगी . इधर भी मेरी धूर ही धूर दिखाती थी . कहावत है कि "दिलों पर खाक उड़ती है मगर मुँह पर सफाई है" अत को मैंने अपने जी से यह दोहा पढ़ा—

> वह गए बालम वह गए नदी किनार किनार।
> आप गए लगि पार पै हमैं छोड़ि मझधार ॥

स्नान करके घर आई . घर के कुछ काम न अच्छे लगे . माँ से कहा "मां आज मेरा माथा पिराता है" मां ने पूछा "क्यों"— मैंने उत्तर दिया "क्या जानूँ—शरीर तो है" माँ बोली "तौ जा सो रह"—यह तो मेरे ही मन की कही . मैं शीघ्र जा सेज पर सो रही और मूड़ को ढाँक खूब रोई—भूख प्यास सब भूल गई . तन से मन निकल कर मनमोहन के पास चला गया . खाट पर केवल शरीर धरा रहा . माँ ने बहुत कहा "बेटा कुछ खा ले" पर मैंने कुछ उत्तर न दिया . अंत को माँ ने मुझे सोई जान फिर हुँत न कराया—घूंदा ताड़ गई पर मुझसे कुछ भी न कहा . यद्यपि वह मुझे बहुत चाहती थी पर उसका श्यामसुदर पर गुप्त प्रेम रहने के कारन मुझसे कुछ कुछ बुरा मानती थी . श्यामसुदर उस्से भी हँस के बोलते पर उनका सब प्रेम मेरे ही लिए था . वे अपने प्रान को भी इतना नहीं चाहते थे . नैनों की तारा मैं ही थी . प्रेम-पिंजर की उनकी मैं ही सारिका थी . ब्रह्म, ईश्वर, राम, जो कुछ थी मैं थी, वे मुझे अनन्य भाव से मानते थे. पर हायरी मेरी बुद्धि अब कहाँ विलाय गई . भद्र ! मैं अब वह नहीं हूँ जो पहले थी अब वह बात ही चली गई . मैं श्यामसुदर के मुख दिखाने के योग्य नहीं हूँ . श्यामसुंदर अभी तक मुझे उसी भाव से मानता जानता है और अनन्य भाव से भजता है पर मैं—हाय—अब क्या कहूँ, मेरी कपट रीति विश्वासघात--हाय रे दई—मैं सब कुछ ए कुवचन सहूँगी . जगत की कनौड़ी बनूँगी—हायरे दई—मुझे जो चाहे दंड दे—मेरी गर्दन झुकी है ले जो चाहे सो कर—

में हूँ तक न निकालूँगी . मार मार जार डार जैसा मैंने उन्हें जराया है तू भी मुझे जलाकर कैला कर दे-हाय रे ईश्वर--हाय हाय रे करम-क्या मैंने सब धरम बहा दिया . किस भरम में पड़ी शरम भी नहीं आती—हा हा" ऐसा विलाप करते करते गिर पड़ी . सत्यवती और वृंदा ने सम्हार लिया . अपनी ओली में बैठाकर मुख पोंछा हवा करने लगीं . चूमा लिया, पर मैं तो इस लीला को देख दग हो गया . स्तब्ध होकर भीति की सी चित्रौर बन गया; अनिर्वाच्य हो गया . आश्चर्य करने लगा कि ऐसे मनोहर शरीरवाले भी जो केवल पुण्य के पुंज हैं, दैहिक, दैविक और भौतिक तापों की ताप में तपते हैं आश्चर्य है कोटिवार आश्चर्य का आस्पद है, मैंने कुछ सुरीली तानें भरीं, श्यामादेवी की आँखें खुलीं . वृंदा बिजना झलती थी . वह इन सब बातों की प्रत्यक्ष देखने वाली थी सब कुछ समुझ बूझकर सासें भर भर के रह गई . देवी को संज्ञा हुई, मैं हाथ जोड़कर बोला .

"कमलनयनी ! तू क्यों इतनी अधीर हो गई . अभी तो कहानी पूरी भी नहीं हुई इतने ही में ऐसा हाल हुआ, पूरी होते होते न जाने तेरे प्रान बचैंगे कि नहीं—वृंदा तनिक देवी को समझा दे शोच न करै, क्या ऐसे ऐसे जनों को भी दुःख का लेश चाहिए"

श्यामा देवी गद्गद स्वर और स्खलित अक्षर से बोली "सौम्य ! तुम बड़े सभ्य हो . यह स्थल ही ऐसा है कि यदि तुम इस सब वृत्तांत के साक्षी होते तो न जाने तुम्हारी कौन सी गति होती, पर तुम्हारा चित्त इस कहानी को पूरी कराने में लगा है तो लेव सुनो . मैं रोते गाते सब कुछ कह सुनाऊँ गी" इतना कह सुखसे सिंहासन पर बैठ गई. चंद्रमा की प्रभा ने मुख कोकनद को विकास कर दिया था . दंत की छटा मंद मंद कौमुदी में मिली जाती थी . वृंदा पंखा झलने लगी, सत्यवती ने पान का डब्बा खोलकर सामने धर दिया और सुशीला रात बहुत हो जाने के

कारण सोने लगी . देवी ने मुख पोछा दोनों हाथ पसार ईश्वर से मंगल कुशल के साथ पूरी कथा कहने के (की) शक्ति का आवाहन किया, सरस्वती से हाथ जोड़े भगवती के पदकमल स्पर्श करके यों कहने लगी—

"सुनो जो मेरी बड़ी बुरी दुर्दशा हुई . मुझे श्यामसुंदर का वियोग सताने लगा . उनके उठने बैठने के ठौर मुझे काटे खाते थे और मैंने बार बार यह छंद पढ़ा .

> खोर लौं खेलन जातो न तौ कहुँ
> श्रालिन के मति में परती क्यौं ।
> देव गुपालहि देखती जौ न तो
> वा विरहानल मैं बरती क्यौं ॥
> बावरी श्राम की मंजुल बाल
> सुमाल सी ह्वै उर मैं श्ररती क्यौं ।
> कोमल कैलिया कूकि कै भूर
> करेजन को किरचैं करती क्यों ॥

बस मेरी ठीक यही दशा हो गई थी, परवश में पड़ी थी . प्रान तो श्यामसुंदर के पास थे शरीर मात्र यहीं रह गया था. उधर श्यामसुंदर भी बेचैन थे . मकरंद से अपना दुःख का रोना रोया करते . संसार उन्हें सूना हो गया . अन्न जल में स्वाद नहीं लगता . सॉंप की साँस सी समीर लगती, शरीर में ऐसी पीर उठती मानौ भुजग की मैर हो, नेत्र नरगिस के (की) भाँति हो गए, पीरीं पीरीं पत्तियों की भाँति तन सूख गया था . वदन सूखि के किंगडी और रंग तार हो गई थी, रोम रोम से सुर उठकर मेरा ही नाम बजता था . यद्यपि अभी उन्हें गए दो चार दिन से अधिक नहीं भए थे तथापि विरह ने व्याकुल कर दिया था . दिन भर मेरा गुन गाते और रात को मेरा स्वप्न देखते . वन वन धूर छानते फिरे घन पर्वत की कंदराओं में मेरे ही वियोग की तान गान कर कर झाँई से हुँकारी झराते थे .

देखी कहूँ मृगनैनी अहो वन पर्वत निर्झर सो मुहि भाखो
बात सों कंवित पादप हाय कहो किहि आतप को दुख चाखो।
हौं जगमोहन श्यामा विहाय फिरौं विलखाय इतै मन माखो
देहु बताय कहाँ गई मोहिनी मूरत आरत को जिय राखो॥
देखो कहूँ सरिता गिरि खोह कहूँ मनरंजनि मोहिनी मूरति
सो गई पंकज लेन कै खेलत कै बहलावत है मनहूँ अति।
कै कहुँ प्रेम प्रकासिबे काज लुकाय रही वन पल्लव सूरति
हौं जगमोहन देहु बताय वियोग शरीर अजौं मुहि भूरति॥

इसी प्रकार के अनेक गीत अभीत हो वन में गाते फिरते. इस चौपाई को बार बार कहते, मकरंद ही केवल इन्हें साहस देता रहता.

सो तन राखि करब मैं काहा। जिन न प्रेम पन मोर निबाहा॥
हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते॥"

और कभी कभी यह भी—

मुसौवर खीचले तसवीर गर तुझमें रसाई हो।
उधर शमशीर खींची हो इधर गरदन झुकाई हो॥

ये रस की भीनी तुकें गा गा कर आँसू भर लेता. अंत को उसने मुझे एक पत्र भेजा—जिसको मैं तुमसे कहती हूँ.

"प्रानप्यारी

"रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग॥"

इसे समझ लेना जब से मैं तुम्हारी दया दृष्टि से दूर हुआ दर दर घूमा पर ऐसा कोई न मिला जो तुम्हारे विरहताप की ताप मिटाता. वन के रम्य रम्य मनोहर स्थलों को देख तुम्हारे बिना करेजा टूक टूक हो जाता है. प्रतिकुंज में तुम्हें देखता हूँ—पर स्वप्न सा जान पड़ता है.

इस साल श्यामापुर में मेरी फाग नहीं हुई, कारण तुम जानती हो, लिखने का प्रयोजन नहीं, बस—समक्ष जावो, इसी से मैंने टर दिया सो देखो इस साल की फाग ने मेरे बदन में आग लगा दी है, तन में वियोगाग्नि की भस्म रूपी अबीर लगी है, नैन पिचकारी हो गए हैं और ताप की ज्वाला में तन जरा जाता है. शोक और चिंता रूपी जुगल कपोलों में पीर की राख लगी है. अधिक क्या लिखें, तुम्हारा वियोग सहा नहीं जाता. इस पावन बन में केवल मैं ही अपावन होकर विचरता हूँ मुझे वन के जंतुओं ने भी दीन मलीन और पापी जान तज दिया. जब तुमसे विलग हुए तब और कौन जगत में मेरे संग लग सक्ता है. मुझे पक्षी भी देख भागते हैं. शुक सारिका भी क्रूर शब्द सुनाते हैं—अब कहाँ तक कहें. इसका उत्तर देना, मैं भी कुछ दिनों में आ पहुँचता हूँ. धीरज धरना और मुझे कदापि अपने जी से न टारना.

दोहा

चातक तुलसी के मते स्वातिहु पियै न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़त भली घटे घटैगी कानि॥

इस पावनारण्य से मैं मार्जारगुहा को जाऊँगा, वहाँ से चीरपुर होते वाणमर्य्यादा नामक ग्राम में दो दिन निवास करूँगा, वहाँ पहुँचकर मार्ग का वृत्त लिखूँगा पर तुम इस पत्र के उत्तर देने में विलंब न करना. पूर्वोक्त युक्ति से पत्र मुझे अवश्य मिलैंगे. इन वनों का भी संपूर्ण वर्णन—पर सक्षेप यदि हो सका तो तुम्हारे मनोरंजन के लिए भेजूँगा—कृपा रखना.

द्वापर—फाल्गुण तुम्हारा वही अपावन
पावनारण्य. श्यामसुदर—"

यह पत्र मुझे वृंदा के द्वारा मिला—उसे हरभजना ने दिया था. मैंने पढ़कर छाती से लगाया और बार बार चूमा. मैंने उसी क्षण इसका उत्तर लिखा.

उत्तर

श्रीः

"श्यामसुंदर !

बृंदा ने हमें आपकी पाती दी . आप हमारे विरह में क्यों–अब क्या लिखूँ ? भूल गई ! क्षमा करो . चलते समय मैंने कुछ कहा था न ? उत्तर क्यों नहीं दिया, दूर निकल गए, क्या चिंता—

"हिरदे से जब छूटि हौ मरद बदौंगी तोहि"[1]

दोहा

पंच द्यौस दस औधिकर गए नाथ केहिं देश ।
सो बीती अब प्रान कहु रहैं सु किमि तन लेश ॥
बीर धीर मुहिं तजि गयो लै गो असन रु पान ।
हा प्यारो क्यौं छोड़िगो हमारे सठ मान ॥

तुम तो चतुर हो इसे सत्य जान जो उचित हो सो करना—

श्यामा"

द्वापर—फाल्गुण .

यह पत्र उसी रीति पर भेज दिया और उनके पास भी पहुँच गया. उसके उत्तर में उन्होंने एक लंबा पत्र पीतवन से लिखा , उसमें प्रति दिन का वृत्तांत था .

"प्राणप्यारी, तुम्हारा पत्र मुझे पीतवन में मिला मुझे इतना सुख हुआ कि मैं अपने को भूल गया . जिस समय दूत ने तुम्हारी पाती मुझे दी मैं शिवरूप साक्षात् हो गया . इधर उधर ढूँढ़ने लगा कि इस दूत को क्या दूँ . पाती से आधी भेंट होती है . उसके प्रत्यक्षर मेरे लिए रामनाम थे . बड़ी देर तक उलट पलट बाँचा और सोने के संपुट में

जलवायु दोनों भले नहीं इसी से दूसरे ही दिन कूच कर गए. शुक्र के दिन तुम्हारे ही पत्र की आशा लगी रही."

"शनिवार का दिन वाणमर्यादा में बीता. यहाँ से पर्वत पाँच कोस पर रहे. यहाँ अच्छा सरोवर जिसके किनारे कदली का उपवन है शोभित है, भगवान् भवानीपति का मंदिर यहाँ के ग्रामीणों को अवलंब है. यहाँ के 'रसालाराम' में तंबू तना था. ग्राम भी कुछ छोटा नहीं और ग्रामाधिप भी ऊँचे जात का पुरुष है. आज होली जरी—मेरा शरीर तुम्हारे बिन आप होली हो गया है. झोली में अबीर भर भर हमजोली की भीर में घुस रसाल रसाल कबीर गाते हैं. इस बन में होली का उत्सव कुछ विचित्र सा जनाता है, जैसे दूध में मिरचा, विलायत के गिरिजाघर में कुरान की आयत का पढ़ना या रामचन्द्र के मंदिर में प्रभु ईशुमसीह का नाम लेना और बैंड बजाना तथा मसजिद में शंखध्वनि का होना इत्यादि जैसे असंभव और असंगत जनाते हैं वैसे ही इस देश में ऐसे उत्सव थे."

"रविवार के दिन मैंने चातकनिकुंज जाने का विचार किया. यह उत्कल देश का द्वार है और यहाँ का स्वामी बड़ा नामी पुरुष है. पर यह देश तुम्हारे पूर्व पुरुषों का निवास था इसी से वर्णन नहीं किया. तुमने अपने माता पिता से इसका सब वृत्तांत सुन ही लिया होगा— निदान यहाँ से प्रातःकाल ही को रथ पर बैठा और सायंकाल तक देख भाल फिर वाणमर्यादा को लौट आया. इस ग्राम से यह केवल चार कोस पर था. इस राज्य में रसाल के रसाल रसाल विशाल वृक्ष बहुत हैं, इसका नाम मैंने कोकिलकुंज रख दिया है. इस ग्राम का स्वामी जब मैं गया उपस्थित न रहा पर उसके प्रतिनिधि ने बड़ा सत्कार किया और यहाँ के मुख्य मुख्य निवास और कार्यालय दिखलाए. वश का सघन वन इसके चारों ओर लगा है और राजा के महल एक पर्वत पर

मढ़कर हृदय-कपाट के द्वार पर लटका लिया . पत्रवाहक को सकुच कर चार सहस्र स्वर्ण पारितोषक दिये . उस गरीब का काम ही हो गया . हमारी तुम्हारी जय मनाते घर गया . पावनारण्य से बुधवार के दिन सायकाल मकरंद और मधुकर के साथ चलकर मार्जारगुहा में पहुँचे, आज केवल एक कोस चलना पड़ा इस अनूप देश का अधिपति एक वृद्ध भील जिसका नाम विराध है मार्जारगुहा में वास करता है, इसके दो चार तुरग और हाथी सदा संग म रहते (हैं) . इसके विकट आयुध भाला और फरसा थे . तलवार कटि में लटकी रहती—हाथी का सा भारी मस्तक—कराल दंष्ट्रा—सिर पर फूल की कलगी खुसी—वृक्ष से भुजा विकट गह्वर सा उदर—अजगर से दोनों पाँव चट्टान सी छाती—हाथी पर सवार तरवार आगे धरे ऐसा भयानक लगता था मानों भयानक रस आज मूर्तिमान् होकर सजीव पर्वत पर बैठा चला आता है . यहाँ बहुधा वन दूर दूर पर हैं. यह महीप मेरी अगुआनी के लिए महासागर तक आया आज मनुष्य और पशु की वार्तालाप जो पुराने ग्रंथों में लिखी है ठीक ठीक सत्य और प्रत्यक्ष देखने में आई .

"नर वानरहि संग कहु कैसे"

इस चौपाई का मानों अर्थ खुल गया इस ग्राम में एक दिन चूतवाटिका में डेरा लगा कर रहा अतिथि-पूजन भली भाँति हुई और चलते समय मधुकर के हाथ गरम कर दिए . यह एक ब्राह्मण है, यहाँ यही लेखा लगा

"बृहस्पति के दिन हम लोग धीरपुर पहुँचे . यहाँ का ग्रामपति विराध से कुछ सभ्य है इसका नाम खर है—यहाँ मलयज नामक वन निकट है यह खर उस वन का केसरी सा दिखता था . इसका रूप विराध से कुछ थोड़ा ही अच्छा है इस लिए अधिक नहीं लिखते . यह ... जलप्राय वन के निकट ही यह बसा है . यहाँ के

जलवायु दोनों भले नहीं इसी से दूसरे ही दिन कूच कर गए. शुक्र के दिन तुम्हारे ही पत्र की आशा लगी रही."

"शनिचार का दिन वाणमर्यादा में बीता. यहाँ से पर्वत पाँच कोस पर रहे. यहाँ अच्छा सरोवर जिसके किनारे कदली का उपवन है शोभित है, भगवान् भवानीपति का मंदिर यहाँ के ग्रामीणों को अवलंब है. यहाँ के 'रसालाराम' में तंबू तना था. ग्राम भी कुछ छोटा नहीं और ग्रामाधिप भी ऊँचे जात का पुरुष है. आज होली जरी—मेरा शरीर तुम्हारे बिन आप होली हो गया है. झोली में अबीर भर भर हमजोली की भीर में घुस रसाल रसाल कबीर गाते हैं. इस वन में होली का उत्सव कुछ विचित्र सा जनाता है, जैसे दूध में मिरचा, विलायत के गिरिजा-घर में कुरान की आयत का पढ़ना या रामचंद्र के मंदिर में प्रभु ईशु-मसीह का नाम लेना और बैंड बजाना तथा मसजिद में शंखध्वनि का होना इत्यादि जैसे असंभव और असंगत जनाते हैं वैसे ही इस देश में ऐसे उत्सव थे."

"रविवार के दिन मैंने चातकनिकुंज जाने का विचार किया. यह उत्कल देश का द्वार है और यहाँ का स्वामी बड़ा नामी पुरुष है. पर यह देश तुम्हारे पूर्व पुरुषों का निवास था इसी से वर्णन नहीं किया. तुमने अपने माता पिता से इसका सब वृत्तांत सुन ही लिया होगा—निदान यहाँ से प्रातःकाल ही मैं रथ पर बैठा और सायंकाल तक देख भाल फिर बाणमर्यादा को लौट आया. इस ग्राम से यह केवल चार कोस पर था. इस राज्य में रसाल के रसाल रसाल विशाल वृक्ष बहुत हैं, इसका नाम मैंने कोकिलकुंज रख दिया है. इस ग्राम का स्वामी जब मैं गया उपस्थित न रहा पर उसके प्रतिनिधि ने बड़ा सत्कार किया और यहाँ के मुख्य मुख्य निवास और कार्यालय दिखलाए. वंश का सघन वन इसके चारों ओर लगा है और राजा के महल एक पर्वत पर

मढ़कर हृदय-कपाट के द्वार पर लटका लिया. पत्रवाहक को सकुच कर चार सहस्र स्वर्ण पारितोषक दिये. उस गरीब का काम ही हो गया. हमारी तुम्हारी जय मनाते घर गया. पावनारण्य से बुधवार के दिन सायंकाल मकरंद और मधुकर के साथ चलकर मार्जारगुहा में पहुँचे, आज केवल एक कोस चलना पड़ा इस अनूप देश का अधिपति एक वृद्ध भील जिसका नाम विराध है मार्जारगुहा में वास करता है, इसके दो चार तुरग और हाथी सदा संग में रहते (हैं). इसके निकट आयुध भाला और फरसा थे. तलवार कटि में लटकी रहती—हाथी का सा भारी मस्तक—कराल दंष्ट्रा—सिर पर फूल की कलगी खुसी—वृक्ष से भुजा विकट गह्वर सा उदर—अजगर से दोनों पांव चट्टान सी छाती—हाथी पर सवार तरवार आगे धरे ऐसा भयानक लगता था मानों भयानक रस आज मूर्तिमान् होकर सजीव पर्वत पर बैठा चला आता है. यहाँ बहुधा वन दूर दूर पर हैं. यह महीप मेरी अगुआनी के लिए महासागर तक आया आज मनुष्य और पशु की वार्तालाप जो पुराने ग्रंथों में लिखी है ठीक ठीक सत्य और प्रत्यक्ष देखने में आई.

"नर बानरहि संग कहु कैसे"

इस चौपाई का मानों अर्थ खुल गया इस ग्राम में एक दिन चूतवाटिका में डेरा लगा कर रहा अतिथि-पूजन भली भाँति हुई और चलते समय मधुकर के हाथ गरम कर दिए. यह एक ब्राह्मण है, यहाँ यही लेखा लगा

"बृहस्पति के दिन हम लोग वीरपुर पहुंचे. यहाँ का ग्रामपति विराध से कुछ सभ्य है इसका नाम खर है—यहाँ मलयज नामक वन निकट है यह खर उस वन का केसरी सा दिखता था. इसका रूप विराध से कुछ थोड़ा ही अच्छा है इस लिए अधिक नहीं लिखते. यह ग्राम मैदान में है. जलप्राय वन के निकट ही यह बसा है. यहाँ के

जलवायु दोनों भले नहीं इसी से दूसरे ही दिन कूच कर गए. शुक्र के दिन तुम्हारे ही पत्र की आशा लगी रही."

"शनिवार का दिन बाणमर्यादा में बीता. यहाँ से पर्वत पाँच कोस पर रहे. यहाँ अच्छा सरोवर जिसके किनारे कदली का उपवन है शोभित है, भगवान् भवानीपति का मंदिर यहाँ के ग्रामीणों को अवश्य है. यहाँ के 'रसालाराम' में तंबू तना था ग्राम भी कुछ छोटा नहीं और ग्रामाधिप भी ऊँचे जात का पुरुष है. आज होली जरी—मेरा शरीर तुम्हारे बिन आप होली हो गया है. झोली में अबीर भर भर हमजोली की भीर में घुस रसाल रसाल कबीर गाते हैं इस वन में होली का उत्सव कुछ विचित्र सा जनाता है, जैसे दूध में मिरचा, विलायत के गिरिजा-घर में कुरान की आयत का पढ़ना या रामचन्द्र के मंदिर में प्रभु ईशु-मसीह का नाम लेना और बैंड बजाना तथा मसजिद में शंखध्वनि का होना इत्यादि जैसे असंभव और असंगत जनाते हैं वैसे ही इस देश में ऐसे उत्सव थे."

"रविवार के दिन मैंने चातकनिकुंज जाने का विचार किया. यह उत्कल देश का द्वार है और यहाँ का स्वामी बड़ा नामी पुरुष है. पर यह देश तुम्हारे पूर्व पुरुषों का निवास था इसी से वर्णन नहीं किया. तुमने अपने माता पिता से इसका सब वृत्तांत सुन ही लिया होगा— निदान यहाँ से प्रातःकाल ही को रथ पर बैठा और सायंकाल तक देख भाल फिर बाणमर्यादा को लौट आया इस ग्राम से यह केवल चार कोस पर था. इस राज्य में रसाल के रसाल रसाल विशाल वृक्ष बहुत हैं, इसका नाम मैंने कोकिलकुंज रख दिया है इस ग्राम का स्वामी जब मैं गया उपस्थित न रहा पर उसके प्रतिनिधि ने बड़ा सत्कार किया और यहाँ के मुख्य मुख्य निवास और कार्यालय दिखलाए. बाँस का सघन वन इसके चारों ओर लगा है और राजा के महल एक पर्वत पर

बने हुए हैं जो सजल होने के हेतु अति मनोहर लगते हैं . निर्झरों का घर्घर शब्द—वनजतुओं का गर्जना—सिह व्याघ्रों का तरजना जिमे सुन विचारी कोमल बालाओं के हृदय का लरजना—इस दुर्ग के गुर्जो ही से बैठे सुन लो . सुदर सरोवर बरोबर बरोबर जिन पर तरोवर झुके है शोभा बढ़ाते हैं . यहाँ से लौट कर बाणमर्यादा के रसालाराम' में रात भर विश्राम किया , तुम्हारा स्वप्न आधी रात को देखा ऐसा देखा मानो तुम्हारे पिता ने तुम्हें कहीं भेज दिया हो और ज्योंही मैं उन्हें निवारने लगा मेरे नेत्र खुल गए करेजा काप उठा . होनहार प्रबल होती है पर भावी वियोग यद्यपि स्वप्न ही था तथापि शोक का अकुश कुश की भाति हृदय में गड़ गया था कुछ गड़बड़ तो नहीं हुआ , लिखना . पर तुम्हारी प्रीति की कथा यहाँ तक विदित है ."

"सोमवार २—'आज मैं बाणमर्यादा से बाराहगर्त्त को आया. छोटे छोटे ग्राम बहुत से विराम के लिए पथमें मिले पर कहीं नहीं ठहरा बाराहगर्त्त नामक वन अच्छा सुहावना लगता है . यहाँ के पर्वत और शैल आकाश को अपने अपने श्रृंगों से छूते जान पड़ते हैं यह तराई का प्रदेश आगे बढ़ने से ऐसा लगता है मानों अघासुर के उदर में हम लोग ग्वाल बाल के (की) नाई घुसे जाते हों, दोनों ओर सघन शैल की श्रेणी—बीच में सूक्ष्म मार्ग—मानों घन चिकुर में सेंदुर भरी माँग— यहाँ की मृत्तिका लाल होती है . मध्याह्न के उपरात आखेट के लिए गए थे ४० मनुष्यों ने मिलकर खेदा किया पर केवल एक शशक निकला सो भी हे शशाक-बदनी तुम्हारे नाम के प्रथमाक्षर सरीखा जान छोड़ दिया गया . आज का दिन अच्छा कटा सभी लोग डेरे में बैठे बैठे वनो की नाना कथा कह रहे हैं .

"मगल ३—आज मगल ही मगल है . लोग कहते हैं "जगल में मंगल '—सो ठीक हैं—यहीं पर होली का दगल भी आज हुआ और

इसी पीतवन में तुम्हारे प्रेमपत्र ने मुझे सनाथ किया . मैं आज कुछ और हूँ . मेरा शरीर और मन पीररहित हैं . मृगया के अनंतर मैं इस सर्ज के तरे बैठा हूँ . धीर समीर मेरे श्रम को मिटाती है—तुम्हारे शरीर को स्पर्श करके आती अवश्य होगी , तभी तो मेरे ही-तल को शीतल करती है . तुम्हारी पाती ने आज जो मुझे आनंद दिया—ईश्वर ही साक्षी (है) —सब व्यवस्था तो पूर्व पत्र में लिख ही चुके हैं ".

"बुधवार ४—आज पीतवन में डेरा है . आगे नहीं बढ़े ."

"बृहस्पति ५—पीतवन से आज चल के पुष्पडोल में डेरा हुआ, यहाँ उल्लुक नाला सघन बन से निकला है , इसी के तट पर आज विकट कटक पड़ा . बनैले जंतुओं के भयानक रव का दव कैसा सुनाई पड़ता है . आधी रात में सब सून सान परा है केवक हूँमा की हुँकारी की झांई पर्वत के कंदरों में बोलती है ."

"शुक्र ६—आज भी पुष्पडोल में रहे काम बहुत था ."

"शनिवार ७—पुष्पडोल से रत्नशिला . यह शैलमय वनोद्देश ऐसा सघन और विचित्र है कि ऐसा मैंने इस प्रदेश में पूर्व नहीं देखा था . शार्दूल गज गवय भालू इत्यादि समूह के समूह इतस्ततः घूमते दिखाई देते हैं . यहाँ केवल पगडंडी राह है . मन चलता है कि इस विजन वन में एकांत हो केवल तुम्हारे ध्यान में मग्न हो बैठें ".

"रविवार ८—रत्नशिला से सरलपल्ली, इस पल्ली में केवल तीन घर हैं . दूध दही कुछ नहीं मिलता, बन का अन्न भी दुर्लभ है . किसी प्रकार से निर्वाह कर लिया . यह दण्डकारण्य का प्रदेश दर्शनीय है . हा देव हमारी श्यामा को क्यों बिलग कर दिया ."

"सोमवार ९—सरलपल्ली से यमपुरी यह पुरी साक्षात् यम की पुरी है . यहाँ का जल बड़ा दुखदाई और ज्वरादिक अनेक रोगों को

उपजाता है . नागरिक लोग यहाँ आते ही यमसदन सिधारते हैं . हम लोग सहे वहे हैं किसी प्रकार से दिन काट ही लेते हैं यहाँ से निकट ही मतंगवाटी नाम की घाटी प्रसिद्ध है . इसकी उतरने की परिपाटी ऐसी दुस्तर और अटपटी है कि दाढी आदि वसन वदन पर नहीं रह सकते . यहाँ के वासी लाटी बोलते हैं . इस वन के बाँस की सांटी (सोंटा) प्रसिद्ध है लोग बड़े कुपाटी—नट नटी से कूद कूद वन में विचरते रहते हैं . सुनते हैं कि यहाँ एक वृद्ध व्याघ्र बुद्धि का भरा किसी अन्य देश से आया है . यह ऐसा ढीठ है कि ग्राम के पशुओं को दिन धोसे धर खाता है ."

"तुम्हारा केवल—वस—वही ."

"यहाँ से चल श्यामसुंदर मान्यपुर की ओर मुड़े . मेरे लिखे अनुसार कंचनपुर के पथ में पाँव भी न धरा . उन्हें अब चटपटी पड़ी और मेरी सूरति की सुरत करते करते मग्न हो जाते . किसी प्रकार से दो दिन और गली में भली भाँति लगाए . पर इसका हेतु बिजली और मेह था . बदली छाई रहती . अकाल के मेघ दुर्दिन के सूचक थे . सुदिन के सूर्य ने अंत में वियोग तम फाड़ दिया . हंसमाल में आ पहुँचे . वसंत झलकी आम के मौर लगे जिनपर भौंर के डेरा जमे . धमार की मार होने लगी . सरसों के खेत फूले—धान पकी—कोइल कुहकने लगी . जिधर देखो उधर उत्सव ही उत्सव था' पर इस अवसर पर केवल श्यामसुंदर ने निरुत्सवता की समाधि लगा ली थी . आँख मूँद के मेरा ही ध्यान लगा लेते और यदि कोई बीच में बोलता तो—"श्यामा—श्यामा" कह उठते, उन्हें उनके एक प्राचीन प्रियतम का कवित्त बहुत प्यारा लगता और बार बार उसी को अकेले दुकेले कहते रहते .

श्रावत वसत श्रालो कत के मिलाप बिनु
मदन भभूकैं अंग अंग आन फूकैंगी।

हरीचंद फूलैंगे पलास कचनार वन
. निविध समीर की झकोरैं चारु झूकैंगी ॥
गावत बहार ह्वैहै जीव को निकार आज
एक एक तान प्रान लेन को न चूकैंगी ।
मरैगो कसाई काम वाम कतलाम बिना श्याम
. बैठि डार हाय कोइलैं कुहूकैंगी ॥

हंसमाली में उनके पहुँचने का समाचार मेरे पास पहुँचा, मैं तो आनंदरूप हो गई . तन बदन की सुधि तक न रही; कोई कुछ पूछता तो कुछ का कुछ कह उठती . द्वार में बदनवारे बांधे, हर्ष गात में नहीं समाता था . माता पिता ने पूछा "आज तोरन क्यों सँवारे हैं"मैंने उत्तर दिया "बसंत पूजा है न—माधव का उत्सव करती हूँ". इस यथोचित उत्तर को पा सभी मौन रहे . तुलसी की माला बनाकर पहिनी, केशपाश सँवारे, मांग मोतियों से भरी, नैनों में काजर की डरारी रेख लगाई . पीतांबर धारन कर प्रफुल्लित बदन पीत पंकज सा फूल उठा—जिस मग से वे गए थे उसी मग में उनके आने की आस बाँध टक लाय रही . आशा थी कि साँझ नहीं तो सबेरे तक अवश्य पधारेंगे और मेरे द्वार को सनाथ करेंगे . दिन बीता, साँझ हुई, श्यामसुंदर न आए . रात को आने की तो कुछ आस थी ही नहीं, भोर ही शीघ्र उठने के लिए सांझ ही सब काज पूरा कर चुकी और अल्प आहार कर आठ बजे तक लंबी तान सो रही जिसमें सकारे नींद खुले . रैन में चैन नहीं मिला—नैन प्रान प्रियतम के दर्शन के लिए प्यासे रहे . नींद न लगी ज्यों त्यों कर निशा काटी . इस पाटी से उस पाटी करोंटे लेती रही झपकी भी न ले पाई थी कि रात रहतेई बड़े भोर तमचोर बोला . घर के सब सोए थे . बृंदा को जगाया और तरैयों की छाया रहते स्नान को चली . घाट तो निकट ही था—सूधी बाट धर ली . मेरी एक और

आज तेरा इतने सबेरे स्नान करने का क्या प्रयोजन था . और दिन ऐसा नहीं होता था . आज यह नवीन ठाठ वाहरी भोरी ! क्यों हो !" इतना कह आगे बढ़ी

मैंने कहा "क्या तूने मुझसे कभी पूछा भी था कि वृथा कपट कलंक लगाती है ?"

वृंदा ने कहा—"ठीक है री श्यामा ठीक है—क्यों न हो, तू ऐ न पढ़ी होती तो ऐसी बातें क्यों बनाती भला जो कुछ हुआ सो हु अब यह बताव कि यदि आज श्यामसुंदर आवैं तो मेरा मुख मीं करेगी वा नहीं—सत्य ही कह दे . आज मैं क्या इनाम पाऊँगी . स ही कहना . तिल भर भेद न रखना"—

सुलोचना बोली—"मेरा भी उस इनाम में भाग रहैगा कि नहीं- फिर तेरा सब काम तो हमीं लोग सुधारेंगे " मैंने कहा—"जो चा तुम लोग कहलो अब तो फँस ही गई तुम लोगों से कुछ असत्य थं ही कहना है, सब तो जान ही गई अब मेरे ही मुख से सुनने में च बात लगी है क्या तुम्हारे ऊपर कभी नहीं बीती ?"

वृंदा और सुलोचना बोलीं—'नहीं थोड़ ही कहते हैं—सभी बीतती है, पर हम (ने) तो तेरे कपट पर इतना कहा नहीं तो जै चाहती वैसा ही होता—"

मैंने कहा—"तो अब क्षमा करना—श्यामसुंदर आज आते हों। मुझे उनके दरसन का बड़ा चाव है सखी सुलोचना कैसा (कैस करूँ रहा नहीं जाता—

सखी हम कहा करें उनके बिन।
वह मोहिनि मूरति छिन छिन में भूलति नैनन निसिदिन ॥१॥
उठत चलत बैठत निसिबासर डोलत बोलत चितवत।
घर के काज अकाज किए सब जग मुख दुखमय बितवत ॥२॥

कछु न सुहात बात सुनु एरी मात पिता परिवार।
हिय में बसत एक उनकी छबि वे पति हृदय विचार ॥३॥
हँसनि कहँनि बतरानि माधुरी खटकत जिय दिन रैन।
पै उनके बिनु कल न परै पल अलि औरौ निशि चैन ॥४॥
सोवत जगत डगत मनमोहन लौ घन चिन मझार।
आधीरात सुरति जब आवति हूलै विरह कटार। ५॥
कैसी करौं सुलोचनि वृंदा—कटै न श्यामा रात।
*कही सुनी जो श्यामसुँदर ने सो खटकत दिन जात ॥६॥

यदि आज आ गए तो अच्छा होगा—नहीं तो मेरा दु ख फिर दूना हो जायगा—पर देख अभी मेरी बाईं आँख और भुजा दोनों फरके, सगुन हुआ अब चिंता गई—तो चल शीघ्र ही स्नान करके घर चलें नहीं तो माँ खीझेंगी इतने में काक का बोल सुन श्यामा (मैं) ने कहा—

"सुनि बोल सुहावने तेरे अटा यह टेक हिए में धरौं पै धरौं।
मढ़ि कंचन चोंच पखौवन तें मुकता लरें गूथि भरौं पै भरौं॥
तुहि पाल प्रवाल के पींजरा में अरु औगुन कोटि हरौं पै हरौं।
बिछुरे पिय मोहि मदेश मिलें तुहि काक त हस करौं पै करौं ॥"

सुलोचना ने कहा—"आज श्यामसुदर का आना ध्रुव है टोले में तो कल्ह से उनके आने की चर्चा हो रही ह ' वृंदा सुलोचना और मैं नहा धो घर आई—गृह के कृत्य किए—और ऊपर की खिरकी से उनकी अवाई की प्रतीक्षा करने लगी—और हुआ चिरैया चहचहाने लगीं, गाय और बछरू का शब्द सुनाने लगा अहीर लोग गैयाँ दुहने लगे, अरुणो दय हुआ. मारतड का मडल दिखने लगा. लोग भैरवी गाने लगे, सब लोग अपने अपने इष्टदेवता की मूर्ति पूजते थे पर मैं श्यामसुदर

*'कही श्यामसुदर ने जो कछु सो खटकत हिय बात।' यह भी पाठ है—

की समाधि लगाकर उन्हें ध्यान में पूजती थी. इस प्रकार की पूजा सबसे उत्तम होती है. एक घंटा दिन चढ़ा, दो घटा बीता, तीसरी घड़ी में नदी के उस पार कुछ मनुष्य दिख पड़े—फिर कुछ घोड़े दिखाने—मेरे जी में तो धक्का सा लगा . मैं हक्का बक्का हो गई, जी धूक उठा . छिन भर डिरा सी गई, फिर खड़ी होकर देखने लगी . मेरे घर की अटारी बहुत ऊँची थी, उस पर से बहुत दूर का दिखाता था, उसी पर से देखने लगी घोड़ा ज्योंही निकट आता था मुझे यही जान पड़ता था कि वे ही हैं . अंत को नदी के उस तीर पर आया . पानी टिहुँनी तक रहने के कारन नाव की अपेक्षा कुछ न थी. घोड़ा पानी में हिला, पानी पीने लगा, फिर सास लेने को सिर उठाया, फिर ग्रीवा झुकाई और कुछ पीपा के आगे चला . वह आया—वह आया—जी में इतना हर्ष हुआ कि वृंदा न होती तो मैं कब की नीचे दिगती . वे इस पार आए, अचानक आ गए . किसी प्रतिष्ठित को यहाँ से आगे जाने का अवकाश न मिला कि आगू चल के ल्यावै—वे कदाचित् यही चाहते थे—घाट पर आए, घाट से उनके कुटीर की दो राहें फूटी थीं—एक तो सूधी वंशीवट के तरे से होकर, दूसरी सूधी मेरे घर के तरे से होकर उनके घर को जाती थी . यह दूसरी राह टेढ़ी थी—पर उन्हें इसकी क्या चिता जो सोचते . यह तो राह ही टेढ़ी थी जो उनने धरी . सूधी बाट छोड़ मेरी ही गली से निकले .

"जहाँ तलवार चलती है उसी कूचे से जाना है"

यहाँ पहुँचते ही उनकी आँखें कोने कोने दौड़ी मानों मुझे ही ढूँढती थीं—मैं तो ऊपर की खिरकी से उन्हें निहारती थी . वे तो घोड़े पर थे . खोर में इधर उधर देखा—कोई न दिखा तब अपने कलेजे से पलाश की डार मय गुच्छे के मुझे हाथ से फेंका दिया—बोले कुछ नहीं पर चार आँखें हो गईं—हिये से हिया, दूर ही से मिल गया, ललाट खुजाने के मिस मुझे प्रणाम किया, वृंदा को देख हँस पड़े . सुलोचना की ओर

टेढ़ी दृष्टि कर चले गए. घर के सन्मुख घोड़ा खड़ा कर दिया आप उतरे और कई भले आदमियों से कुछ सूक्ष्म वार्तालाप कर भीतर चले गए. वह दिन तो किसी प्रकार से कट गया पर होनहार न जाने क्या थी. श्यामसुंदर कई दिन तक मुझसे न मिले—मैं एक दिन सोचने लगी—'हाय मुझसे क्या कोई अपराध हो गया है जो श्यामसुंदर सुधि तक नहीं लेते'—ऐसे सोच विचार करते करते कई घड़ी व्यतीत हो गई. मैं नहीं जानती थी कि श्यामसुंदर भी उधर विरह अग्नि में पच रहे हैं और केवल मेरे प्रेम की परीक्षा लेने को कोई युक्ति विचारते हैं. थोड़ी देर के उपरांत उन्ने मेरा स्मरण किया, पूर्ववत् सत्यवती को बुलाके मुझे बुलवाया और मैं उसी कविताकुटीर में गई. श्यामसुंदर मुझे देख उठ खड़े हुए—मेरा हाथ धर लिया और बड़े प्रेम से अपने (अपनी) कुरसी के निकट मुझे भी कुरसी दी, पर मेरी देह कुरसी सी देख खेद करने लगे और बार बार मेरा कुशल प्रश्न पूछा. नैन सजल हो गए—मैं भी सिसकने लगी. कुछ समय तक यही लीला रही. अंत को उनने कहा—"क्यों अब मैं प्यारी कह सक्ता हूँ न—हाँ—तो प्यारी तुम्हारा अंत का पत्र मुझे दो दिन हुए मिला था"—इस पत्र को खीसे से निकाल पढ़ने लगे—

"⌣y। ÷ ⌣3⌣4।r.

।⊙gz ⌣ 5ug⌣. z। —······ ÷ s ⌣ 2g38।r zsr।85.8।rgu।y·z।—⌣। 8g⌣। 9. ।2 + ।X ug ।o ⌣।8g⌣zo—। ⊙zyo8। r5u6 ⌣ ÷ 5 ⌣ — yo ⌣ 38।X5 7।5?

u83 ⊙—।u9⌣।z 8।g.।⊙2।8उz uzR ÷ ।z.+।⌣।. Ozo8। ÷ । v5ag v।8। ÷ 5⌣38।X5 7।58। ÷—।8।⌣

+।5∾? 8। ∸—0—।× ∾।8 9 ∾0।
v ३ 9 . 8। ÷ —o 3 8।∾ u 2 9 ∾।8 9 ∾⌓
38।z9 u5—89 89 38²।z 9 0 8।zz9 8।9.
8। ÷ ∾5 ∾।8।∾5 —।78। z 289 38²0u
u 9। 2।u। u3—8 ×।7z।8।9.

⌓ y। ∸ ।"

इसको बाँच कर कहा—"क्यों यह तुम्हारी ही लिखी है न ?"

मैंने उत्तर दिया—"हाँ—है तो"—

श्यामसुंदर ने कहा—"फिर अब क्या मरजी है ?"

मैंने कहा—"क्या मरजी—मरजी तो सब आपही की चाहिए, मैं तो तुम्हारी दासी के तुल्य हूँ"—

उन्होंने कहा—"मुझे इस बार यात्रा में बड़ा दुख हुआ—प्राणयात्रा केवल प्राण बचाने को होती थी नहीं तो सचमुच आज तक प्राण की यात्रा हो जाती, तब तुम्हारे मुखचंद्र का कौन दरसन लेता .

नाम पाहरू रात दिन ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद यंत्रित जाहि प्रान केहि बाट ॥
श्यामा श्यामा सामरी श्यामा सुंदर श्याम ।
श्यामा श्यामा रट लगी श्यामा प्यारो नाम ॥

बस इतने ही से सब समझ जाना".

मैं कुछ विलंब तक सोचती रही कि क्या उत्तर दीजिए, पर श्यामसुंदर ने उठ कर मेरा चुंबन लिया और बोले "अब क्या विलंब करती हो—कुछ तो कहो—

हौं अधीन तुअ सामरी तुम बिनु जी अकुलात ।
देह दसा तेरे सुमुख क्यौं न पसीजत जात—॥"

मुझे तो कविता बनाना ज्ञात न था—उत्तर में पुराने दोहे कहे—

"प्रीति सीखिए ईख सौं जहँ जो रस की खान।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं यही प्रीति की बान॥"

श्यामसुंदर झटपट बोले—

"प्रीति सिखाई ईख पै गांठहिं भरी मिठास।
कपट गांठ नहि राखिए प्रीति गांठ दै गाँस॥

और भी प्यारी देखो बिहारी ने कहा है—

दृग अरुझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।
परत गांठ दुरजन हिए दई नई यह रीति॥"

मैं हाथ जोर के बोली—"तुमसे कोन बराबरी करै—तुम पडित और सर्वज्ञ हौ—जो चाहो सो कहो—पर कुछ लोक लाज, वेद तो समझो तुम्हैं कौन सिखावे"—श्यामसुंदर खड़े कँपते थे, वदन का थरथराना मैंने लखा. लिलार, कपोल और हाथों में पसीना आ गया, स्वर भंग और प्रलय के लक्षण लक्षित थे—पलकों में आँसू झलके—चैन सतराने लगे—रोमांच हो आया, मुख विवर्ण को प्राप्त हुआ, गात्र भी स्तंभ हो गया. श्यामसुंदर गिरने लगा—मैंने सम्हारने को किया पर तब तक वह भूमि पर आ गया मेरे चरण के नीचे गिर पड़ा. मैं अपने को ऐसी भूल गई कि मंच से न उठी. मेरा भी वही हाल हो गया था, पर शरीर में बुद्धि बनी रही. श्यामसुंदर को हेत कराया—पर वे न बोले. मैंने फिर बुलाया, वे बड़े कातर हो गए थे, गद्गद स्वर से कुछ बोले पर मैं कुछ समझी भी नहीं. कातर नैनों से मेरी ओर देखने लगे. मैने अपने तन की ओर देखा फिर उनको देखा, लज्जित हो गई. मुख नीचे कर लिया, एक पोथी के पत्र गिनने लगी, भूमि को पद के अँगूठे से खोदने लगी. आंख में आँसू की धार चलने लगी, ऊपर देखा न जाता था—साहस कर ऊपर निहारी, फिर मुख नांचा कर लिया. लंबी सांस ली, नैनों का जल आँचर से पोंछ डाला और श्यामसुंदर के मुख की ओर एक बार

और साहस कर बोली—"मान्यवर ! प्यारे ! यह क्या व्यापार है ? यह किस वेद का मार्ग है यह किस न्याय की फक्किका है—किस वेदांत शास्त्र का मूल है—वा मोक्ष का उपाय है—कै तप का नियम है—वा स्वर्ग जाने की नसेनी है—प तुम्हारी दशा भली भाँति समझती हूँ पर इसी से तुम जान लोगे जब मैं कहूँगी कि 'ईश्वर की ओर ध्यान लगावो'—कि मैं स्त्री जाति और बाला भी होकर निर्बुद्धि नहीं हूँ—मुझे भी तो किसी का डर भय है कि नहीं—अकेली तो नहीं हूँ—माता पिता सुनके क्या कहेंगे—तुम तो निर्भय हो—पर मैं तो परवश हूँ—क्या ए सब तुम नहीं जानते—और भी धर्म अधर्म कुछ विचार है कि नहीं—कहाँ तुम और कहाँ मैं वर्णों में कुछ भेद है कि नहीं, भला इन सबों को तो सोचो—कहो क्या कहना है ?"

श्यामसुंदर आँसू भर कर बोले—"यदि शास्त्र तुमने बांचा हो तो मैं कहूँ—न्याय वेदांत और वेदों का भेद यदि तुम जानती हो तो कहो ? मेरी बात का प्रमाण करोगी वा नहीं ? मेरी दशा देखती हो कि नहीं ? धर्म अधर्म की सूक्ष्मगति चीन्हती हो तो कहो ? सुनो—धन्य है तुम्हारे वज्रमय हृदय को जो तनिक नहीं पिघलता मेरी ओर देखो और अपनी ओर देखो . मेरी करुणा और अपनी वीरता देखो . वेद शास्त्र की बात का यह उत्तर है—जो मेरे प्रवीन मित्र ने कहा है—

लोक लाज की गाठरी पहिले देहु डुबाय ।
प्रेम सरोवर पथ में पाछे राखो पाय ॥
प्रेम सरोवर की यहै तीरथ गैल प्रमान ।
लोकलाज की गैल को देहु तिलजुलि दान ॥

. सो यह तो तुम कर ही चुकी हो . न मानो तो अपने पत्रों ही को देख लो भला अपने लिखे का प्रमाण मानोगी कि नहीं ? (सदूक से निकाल कर) भला देखो.तो ये किसके हस्ताक्षर हैं ? तो बस तुम्हारे मौन ने मेरे बचन को पुष्ट कर दिया—अब रहा धर्म अधर्म, उसका भी

एक प्रकार से उत्तर हो चुका—नलदमयंती—दुष्यंतशकुंतला—राधाकृष्ण—विद्यासुंदर—इत्यादि गांधर्व विवाह के अनेक उदाहरण मिलेंगे—द्वापर में नि॰ प करके—और यह भी तो द्वापरयुग है न जहाँ भगवान् यदुनाथ स्वयं यादवों के सहित विराजमान हैं तो फिर अब क्या रहा—जब कहोगी यदुकुलचंद्र से स्वयं पुछवा देंगे

यह (इस) ग्राम का नाम भी तो श्यामापुर किसी भले पुरुष ने धरा है—यहा की गलों और खोरों में—यहाँ के वनों में—यहा के आराम अभिराम में—यहाँ के शल पर्वतो में—यहा के नवग्राम और पुरातन ग्राम म—यहाँ के विलासी और विलासिनियों के सहेट निकुंज में—यहाँ के नदी नाले और निर्झरों के घाट में—जब तक सूर्य चंद्र है श्यामा श्यामसुंदर ऐ (की) प्रीति की कहानी चलेगी, तो प्यारी इतनी दूर बढ़ा के अब क्यों हटती हो! वर्णों के संबंध में कुछ दोष नहीं, देवयानी और ययाति के पावन चरित अद्यापि भूमंडल को पवित्र करते हैं बस यह सब समझ लो—मुझ दीन के अनुराग और भक्ति को क्यों तुच्छ करती हौ, यदि हमारी सेवा तुम्हें भली न लगी हो तो उसकी बात ही निराली है—नहीं तो—बस अब आज्ञा दो'—इतना कह मेरे चरणों पर लोट गया मैंने उसका सिर उठा कर दोनों आखों के बीच में रख लिया, बहुत प्रबोध दिया उन्हें उठाय छाती से लगाया और बोली—"सुनो प्रान—तुम हमारे जीवन धन हौ इसमें संदेह नहीं—मेरे तुम और मैं तुम्हारी हो चुकी तुम्हारी प्रीति की परीक्षा हो चुकी—पर शीघ्रता मत करो—मैं तुम्हें अवसर लिख भेजूँगी—सुलोचना और वृन्दा सहाय करेंगी सत्यवती न जाने—तब तक न जाने जब तक कार्य की सिद्धि न हो तो मुझे विदा दो, सोचने का अवसर दो—और मेरे सुंदर उत्तर का पथ जोहते रहो—अब मैं जाती हूँ—' इतना कह चलने को उद्यत हुई कि श्यामसुन्दर ने मेरा हाथ धर एक बाहु मेरे गले में डाल दिया, अधरों को मेरे अधरों के पास ला बोला—"यदि आज्ञा हो तो एक बार

सुधारस पीलें '—मैं चुप रही . श्यामसुंदर मेरा चुम्बन ले बोले—"लो प्यारी हमारी तुम्हारी शुद्ध प्रीति का अन्तिम चुम्बन है—लो—बार बार लो ."

मैंने बड़े प्रेम से चूमा लिया पर लाज के मारे फिर सिर न उठा सकी—और चादर ओढ़ नैनों को छिपा घर के (की) ओर चली .

श्यामसुंदर तब तक देखते थे जब तक मैं उनके नैनों के (की) ओट न हुई. अंत को मोड़ के पास पहुँचते ही एक बार हाथ जोड़ कर उन्हें प्रणाम किया और वे ललचौहीं नजर से मुझे देखते रहे . अब तो सन्ध्या हो गई थी . गली चलती थी—दीप प्रज्वलित थे—मुझे नाहक श्यामसुंदर इतनी देर बिलमाए रहे थे—पर यह तो प्रेम का झोंका था—प्रेम कथा की धारा कभी रुक सकी है—ज्योंही मैं मोड़ से अपने घर की ओर मुड़ी विष्णुशर्मा आ पहुंचा, लाल बनात का कानों को ढकनेवाला टोपा दिये, रंगीन कौंपेय का दोगा पहिने हाथ में कमंडलु लटकाए—श्वेत धोती पहिरे—गट्टर माला गले में—बनाती बस्ते में पाठ की पोथी कांख में दबाए—नंगे पैर—त्रिपुंड्र धारन किए—भस्म चढ़ाए—लंबी लंबी छाती को छूनेवाली श्वेत दाढ़ी फटकारे तांत्रिक का रूप बनाए आ पहुँचा—इसे देख मैं ऐसी डरी जैसे बाज की झपेट में लवा लुक जाता है वा सिंह को देख हरिनी सूख जाती है—बलिपशु जैसे यजमान को देखे—सर्प के सन्मुख छछूंदर—सिचान के आगे मुनैया इनकी ऐसी गति मेरी भी उस समय हुई . आगे पाँव न उठे—काँपने लगी—करेजा धड़क उठा—पीली हरदी के गांठ सी सूख गई—यद्यपि उन्होंने अभी तक कुछ भी नहीं कहा था तौ भी भयभीत हो काँपती थी—सच पूछो तो चोर का जी कितना—विष्णुशर्मा मुझे देख ठठके गृध्र दृष्टि से मुझे देखा और चीन्ह लिया. इसने मुझे श्यामसुंदर के कुटीर से निकलते देख लिया था या धनेश नाम के महाजन के द्वारे से देखा यह नहीं कह सक्ती पर जैसा मैं अभी कह चुकी मैं सूख तो गई थी . विष्णुशर्मा से और मुझसे

कुछ नाता भी लगता था पर संबंध बहुत दिन पहले से टूट गया था. यही तो और भी भय का कारण था—विष्णुशर्मा बोला—"बाई कहाँ गई थी ?"

मैंने कहा—"दर्शन के लिए."

विष्णु. "अकेली रात को क्यों गई ?"

"अकेली तो नहीं थी वृन्दा, सत्यवती, सुलोचना इत्यादि सभी तो रहीं—वे अगुआ गईं में पीछे रह गई थी"—इतना कह कर मैं शीघ्र चली और फिर उसको और पूछने के लिए अवसर न दिया. विष्णुशर्मा कुछ हकलाता था, इसीसे दूसरा प्रश्न करने में विलंब लगा इतने में तो मैं घर पहुँची और माँ के पास बैठी. माँ ने उस दिन कुछ पपची इत्यादि पक्वान्न बनाए थे. मुझसे खाने को कहा और मैं उधर सुमुख हुई. विष्णु शर्मा अपने घर गया पर मन में ये सब बातें गुनता गया. उसके मन में भरम पड़ गया था पर कोई प्रमाण न होने के कारण मौन रह गया तौ भी जब जब अवसर पाता आपुस के लोगों में निन्दा कर बैठता. श्यामसुंदर के भय से सभी काँपता था. जानबूझ कर भी सभी अनजान सा बन जाता. यहाँ के एक और ग्रामाधीश महाशय थे. उनका नाम वज्राग था. जैसा नाम वैसा ही गुण भी था. उनका नाम सुनते ही सब दुष्ट थर्रा जाते. प्रजा तो उनके हाथ की चकरी थी. भले और दुष्ट सभी मैन के नाक थे. जैसा कहते वैसा करते, उनके डर से शत्रुओं की अबला सदा रोया करतीं, शत्रु लोग स्वयं इधर उधर निःशंक भ्रमन करने में शंकित रहते थे. इनका कुल सदा से उद्दंडता में विख्यात चला आया है. इनके पिता द्विजेन्द्रकेसरी की कहानियाँ अद्यापि कही और गाई जाती हैं—जिस सुबली की संधि के निमित्त विदित शूरवीर कचनपुराधीश ने भी पयान किया. बहुत कहाँ तक कहूँ—

"इंद्र काल हू सरिस जो आयसु लांघै कोय।
यह प्रचंड भुजदंड मम प्रतिभट ताको होय" ॥

ये महाशय श्यामसुंदर के परम मित्र और सहायक थे . सब विद्या लौकिक इन्हें आती थी सब बातों में कुशल—सुशील से उदड भुजा—सदा कुशलपूर्वक सकुटु व यहीं रहते थे विष्णुशर्मा ने वज्राग से सब कुछ कह दिया वजाग ने हँस कर इन्हें डाटा और कहा ' तुम मौन रहो—तुमसे कुछ सबध नहीं—अपनी सूधी राह आया जाया करो—" उस दिन से विष्णुशर्मा ने अपना मुह सी लिया . पर चार कान होते ही बात बिजुली की चिनगारी की भाँति चारों ओर बिथर जाती है . मेरे पिता ने भी किसी भाँति सुन लिया . इधर उधर अपने सरों (सखाओं) से पूछपाछ की पर कुछ जीव न पाया इसी से चुप रहे—पर मुझे संदेह है कि क्या वे हमारा और श्यामसुंदर का प्रेम नहीं जानते थे . क्यों नहीं ? अवश्य, पर क्या प्रेम रखना बुरा है ? प्रेम न रक्खे तो क्या द्वेष ? अब उस बात से कुछ प्रयोजन नहीं जिसके जी की वही जानै—मुझे क्या पड़ी थी जो खुचुर करती . किंचित् काल में सब भूल गए—मैं तो यही जानती थी कि किसी को कुछ ज्ञात नहीं, इसी में भूली रही . क्या करूँ ऐसे समय में ऐसा ही होता है इसी से सब कहते हैं प्रीति अधी होती है इसमें उपहास और निंदा सभी होती है पर जो मनुष्य इसमें फसता है उसे कुछ भी नहीं सूझता . सूझे कैसे—और हाँ तब तो सूझे—

नेकु अवलोकैं जाके लोक उपहास होत
ताही के बिलोकिबे को दौठि ललचात है
जाही निरहागि से दमार सी लगी है देह
गेह सुधि भूली नेह नयो दिन रात है ।
कैसे धरों धीर सिंह विकल शरीर भयो
पीर कहा जानैरी अहीर वाकी जात है
मन समुझाय कीन्हीं केतिक उपाय तऊ
हाय कथा एते पर वाही की सुहात है ॥

गतागत कई दिन बीते, श्यामसुंदर मेरे उत्तर का मग जोह रहे थे. मैं ऐसी निठुर हो गई कि कुछ नहीं लिखा. कारन इसका कुछ कपट या दगा नहीं था—केवल सकुच और लाज थी और ए दोनों स्वाभाविक थीं—अंत को श्यामसुंदर ने मुझे एक पत्र लिखा—

प्रानप्यारी,

दोहा

"बरसि परुस पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिए चतुर चातकहिं चूक॥

मग जोहते एक कल्प बीत गया मन का मनोरथ सब मन ही में रीत गया. यह अनरीत कहाँ सीखी. परतीत देकर यह विश्वासघात! बलिहारी है! धन्य है. लाज नहीं लगती? 'चिट्ठी को मरन बालकन को खेल है"--क्यों--ऐसे ही है न? हम इस पाती में तुम्हारी उस दिन की बात कुछ भी नहीं लिखते वह तो सब तुम्हारे स्मृति के फलक पर लिखी ही होगी तो अब विलंब क्यों करती हौ मैं अपनी दशा क्या लिखूँ—जो न जानती हो तो लिखूँ. प्रेम का हमारा तुम्हारा तत्व एक तो है मन मेरा तुम्हारे पास है. सो प्यारी तुम मेरे मन को जानती हो, उसी से पूछोगी तो सब खुल जायगा बस पर इस दोहे को समझ के उत्तर शीघ्र देना--नहीं तो इधर कूच है,

दुखित धरनि लखि बरसि जल
घनउ पसीजे आय—
द्रवत न तुम घनश्याम क्यौं,
नाम दयानिधि पाय—

तुम्हारा
तृषित,"

इस पत्र का मेरे पर बड़ा असर हुआ . मेरे हृदय में सब बातें व्याप गईं . मैं हाथ पर हाथ धरे रह गई . मन शोच-सरोवर में पड़ गया क्या लिखूँ और क्या न लिखूँ , यही जी में समानी. समय और अवसर के (की) ओर विचार किया, मन कोई (किसी) भाँति नहीं मानता था और मैं ये दोहे एक बेर श्यामसुंदर के पास कह चुकी थी—

मन बहलावत दिन गए महा कठिन भइ रैन ।
कहा करौ कैसी करौ बिनु देखे नहिं चैन ॥
छिन बैठे छिन उठि चलै छिन छिन ठाढ़ी होय ।
घायल सी घूमत फिरै मरम न जानत कोय ॥—

और सत्य भी था . अब क्या उत्तर देऊँ यही सोचती थी . यह तो जान गई कि जो उत्तर मैंने अपने जी में विचारा है वह कदापि उन्हें भला न लगेगा पर जो काज रह के होता है वह अच्छा होता है . मैंने यह पत्र अंत में लिखा .

"प्राणधन ! जीवन आधार ! मेरी राम राम अंतःकरण से लेव . तुम शीघ्रता बहुत करते हो . अवसर को नहीं परखते . यहाँ के भी वृत्तांत पर कुछ ध्यान धरो . मैं सब भाँति तुम्हारी ही हौं, लेव—अब प्रसन्न हुए ? मैं तुमसे अवश्य मिलूँगी . बस बात दे चुकी हार दिया . "प्राण जायगा पर प्रन नहीं जायगा," दो बेर थोड़े ही जन्म होगा कि बात बदलें . पर मेरी विनय यही है जो आप मानिए .

दोहा .

कारज धीरे होत है काहे होत अधीर
समय पाय तरुवर फरै केतिक सींचो नीर ।
क्यों कीजे ऐसो जतन जाते काज न होय
परवत पर खोदै कुआँ कैसे निकसै तोय ।
सुधरी बिगरै वेगही बिगरी फिर सुधरै न
दूध फटै कांजी परै सो फिर दूध बनै न ।

मैं फिर लिखूँगी . क्षमा करना .

तुम्हारी नेह देह तरवर की
श्यामालता ."

इस पत्र को बांचते ही श्यामसुंदर को हर्ष विषाद दोनों एक संग ही उपजे . हँसे और आँसू गिराए . सुलोचना से कहा जाय मेरी दशा कह देना और क्या कहूँ—इतना कह मौन हो गए . पत्र को फिर फिर बांचा . हृदय में लगाकर कहा .

"श्लिष्यति चुम्बति जलधर कल्पम्
हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम् .

निराश से हो गए . मुख से कुछ नहीं कहा भीतर चले गए . फिर बाहर आये . बसन धारन कर निकल पड़े, अकेले थे कोई (किसी) अनुचर को भी साथ में न लिया . नदी के तीर तीर घूमने लगे . चक्रवाक के जोड़े देखकर रोने लगे, फिर आँसू पोंछ आगे बढ़े, दूर ही से मुझे घाट में नहाते देख ठठुके. मैंने भी उन्हें देख लिया, विलंब किया अत की अब सब घाटवारी नहा धो के चली गईं'—श्यामसुंदर आगे बढ़े. जहां मैं थी वहाँ तो कोई न था पर यदि दूसरे (दूसरी) ओर कोई रहा भी हो तो मैंने नहीं देखा, उन्होंने भी नहीं देखा. बस मेरे पास आ गए, ऐसे दीन हो बोले कि मेरा जी नवनीत सा पिघल गया. मैं उन बचनों को क्या कहूँ—कहे नहीं जाते—छाती फटी जाती है, सुधि करते ही जी टूक टूक होता है मुझे स्मरण मत करावो—"

इतना कह श्यामा की बुद्धि भ्रंश हो गई—पुरातन वृत्तान्त मन नेत्रों के सन्मुख नाचने लगा—मैंने कहा "श्यामा—तुम्हारी सज्ञा कहां गई—इस विचारे श्यामसुंदर अभागे की कथा पूरी कर"—इतना कह प्रबोध किया .

श्यामा बोली—'मैं उनका विलाप नहीं कह सक्ती—अपने को

अभागिनी तो कही दिया है . श्यामसुदर मूर्छित होकर गिर पड़े—मैंने सोचा यह क्या अनर्थ हुआ, घाट की बाट—कोई न कोई आही जावै तो मेरी कितनी भारी दुर्दशा हो, और इधर इन्हें छोड़ चली जाऊँ तो भी तो नहीं बनता मैंने मन में कुछ ठान उनका हाथ पकड़ बोली—"उठो तो सही मैं क्या भगी जाती हूँ जो तुम इतने अधीर हो गए. वाह—तुम तो पुरुष और मैं स्त्री हूँ—पर तुम में मुझसा भी धीरज नहीं है—उठो' यह क्या करते हो—" ऐसा कह के उठाया श्यामसुदर उठे और मेरे कंधे के आसरे से खड़े हो गए . मैंने कहा ' यह क्या करते हो—मुझे घाट पर मत छुवो कोई दुष्ट देख लेगा तो वही विष्णुशर्मा—याद है न-उसी दिन सा हाल होगा ."

श्यामसुंदर ने उत्तर दिया—"मैं तो जानता हूँ—पर सुनो अब मुझे अधिक न सतावो. धीर नहीं धरा जाता " इतना कह मुझे छाती से लगाया—मेरे कटि को बाहु में ले भली भांति चुंबन कर अति गाढ़ आलिंगन किया . (की) मैं तो जल का कलस माथे पर धरने लगी थी न तो इसे उतार सकी और न धर सकी. श्यामसुदर ढीठ तो थे ही—मुझे एक पग भी आगे बढ़ने न दिया—मैं उनसे हार गई थी कितना समझाया पर उनके मुख से यही निकला .

अधर कुसुम कोमल ललित तृषित मधुप रस लीन ।
पिय न बाहि दै मधुर मधु धुनि ता कहँ अति दीन—॥

मैं हैरान हो गई इनमें, इनके मारे घाट भी छूटा सा जान पड़ेगा, मैंने चिरोरी किया की) "यह क्या करते हो " इतना ज्योंही कहा कोई दूर से ठुमरी की धुनि में यह कवित्त गा उठा हम लोग ठठक गए और एक दूसरे की ओर निहारने लगे—मुख से बात भी न निकली. ओठों पर हम दोनों के रखौटा लग गया और गीत सुनने लगे.

"छूटो गृह काज लोक लाज मनमोहिनी को
भूलो मनमोहन को मुरली बजायबो

देखि दिन द्वै में रसखान बात फैल जैहै
सजनी कहाँ लौं चंद हाथन दुरायबो
काल ही कालिंदी तीर चितयो अचानक ह्
दोहुन को दोऊ मुरि मृदु मुसिक्यायबो
दोऊ परैं पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैयाँ उन्हैं
भूलि गईं गैयाँ इन्हैं गागरि उठायबो."

मैंने धीर से कहा "मैं तो कहती थी कि कोई देख लेगा भला अब कहो क्या होगा यह तो दुष्ट मकरंद की सी भाख लगती है. जो यह हुआ तो बड़ा अनर्थ हुआ पर तुम अब ऐसा करो कि आगे हो जाव और मुझे अपने पीछे कर लेव, गली में मेरे (मेरी) ओर न देखना और न मकरंद की ओर जिस्में जान पड़े कि तुम्हारा ध्यान किसी ओर नहीं है. वह छोटी सी पुस्तक जो तुम्हारे खीसे में है निकालकर बड़े ध्यानपूर्वक पढ़ते चलो. नैन वहीं गड़ा दो यदि कोई मिलै भी तो बुलाने पर भी मत बोलना. जुहारैं तो सिर भर हिला देना. ऊपर कदापि न देखना नहीं तो नैन अंतरंग भाव के सदा साक्षी रहते हैं छिपते नहीं और समय पर जैसी बनै वैसी चतुराई करना. तो चलो मेरे तुम्हारे साथ चलने में कोई दोप नहीं, ऐसा तो कई बार हुआ है और मेरे पिता ने भी कई बार देख लिया है पर कुछ नहीं बोले".

इतना सुन वे भी यथोपदिष्ट रीति से चले. मकरंद मिला. बड़ी देर तक इस जुगल झांकी के दरसन किए पर श्यामसुंदर ने देखा भी नहीं. ऊँचे चढ़कर गली ही के पास नारद मिले, वे मुझसे कहने लगे "क्यों इतनी देर लगाई चल भौजी बुलाती हैं उसके औपधि का समय है न—" श्यामसुंदर नारद की ओर तनिक न देखे और मैंने भी नारद को उत्तर न दिया. मैं नारद की सदा घृणा करती. उसका मुख मुझे नहीं सुहाता केवल दादा की आन से कुछ नहीं बोलती . किंचित् आगे बढ़कर श्याम-

सुंदर पढ़ते पढ़ते खड़े हो गए गली रुक गई. मैंने कहा "चलिए मुझे जाने दो", यह सुनकर चिहुँक से पड़े बोले "कौन है ? (ऊपर देखकर) श्यामा मैं पुस्तक पढ़ रहा था, तू कहाँ से आगई प्रसंग टूट गया". इतना कह हट गए, मैंने कुछ भी उत्तर न दिया और सूधी घर को चली गई श्यामसुंदर ने भी अपने घर का मग लिया. भगवान का दर्शन किया और उधर से सब मंदिरों की झाँकी झाँक फिर लौट आए. इतने में आठ बज गए. रात सापिन सी आई. बिना साथिन के काटना था पर उलटा वही इन्हें काटने लगी. सेज बिछी थी. मैं भी कुछ ब्यारी करके चिंता में मग्न—गरमी के दिन तो थे ही अटारी पर वृन्दा और सत्यवती के साथ सोने के लिए बिछौने बिछाकर लेटी. चाँदनी छिटकी थी, मैं भी चाँदनी की शोभा आपनी चाँदनी पर से देखती थी, वृन्दा और सत्यवती दोनों मेरे पास बैठीं थीं और कुछ बात चीत कर रहीं थीं नीचे सुलोचना अपने आगन में सोई सोई वृंदा से और कभी कभी मुझसे बातें करती जहाँ मैं सोई थी वहाँ से श्यामसुंदर के बिछौने स्पष्ट दिखाते थे श्यामसुंदर ने उस दिन कुछ भी भोजन नहीं किया और चुप आकर सूनी सेज पर सो रहे थोड़ी देर में रामचेरा और उद्धव दोनों पहुँचे, एक पखा करने लगा और दूसरा पाव मीजने लगा श्यामसुंदर ने ऊपर देख कर कहा "कुछ मत करो—न हमें पखा चाहिए न सवाहन तुम लोग जावो" यह सुन रामचेरा और ऊधो दोनों सूधो मग धरे बाहर आ बैठे, सरप पड़ी थी. श्यामसुंदर अकेले लेटे थे, इतने में ऊधो ने जा हाथ जोड़कर कहा.

"महाराज एक सितारिया आया है और चाहता है कि महाराज को अपना गुन दिखावै यहीं बाहर खड़ा है जैसी आज्ञा हो"

श्यामसुंदर ने सुन लिया, कुछ सोच कर कहा "आने दो पर मकरंद को भी बुला लेना" ऊधो बोला "जो हुकुम" यह कह मकरंद और सितारिया को साथ ले फिर जा उनके सन्मुख बोला महाराज, ए लोग

सब आ गए." परदा उठाई और वे सब कविता कुटीर में घुस गए मकरंद उनके उसीसे के निकट बैठा और सितारिया भी सन्मुख अपना वाद्य आगे धर सलाम कर बैठ गया.

श्यामसुंदर ने सितारिये की ओर देखा और मकरंद से कहा "ए गुनी कहाँ से आए हैं और इनका गुन जस कैसा है ?"

मकरंद ने कहा "सौम्य—मुझसे इनसे प्राचीन परिचय है. ये एक बड़े भारी गुनी के पुत्र हैं जिनका नाम गान और वाद्य विद्या में इस देश में चिरकाल से विख्यात है, उनकी विद्या ऐसी उत्कृष्ट थी मानों गंधर्वों से गान नारद मुनि से बीना और तुंबुर से तम्बुरा सीखा हो. मलार का जब कभी अलाप करते कुऋतु में भी बादल छा जाते. दीपक राग के टेरते ही आपसे आप दीप भी प्रज्वलित हो जाते थे. इनने बहुत कुछ राज दरबारों से कमाया था. उनका नाम रागसागर था. ये उन्हीं के पुत्र प्रेम लालित वीणाकंठ हैं. इनका निवास पहले क्षीरसागर के द्वीपान्तर में था अब इसी श्यामापुर में अपने दिन काटते हैं. मैंने भी एक दो चीजें इनसे ले ली हैं. आपका नाम और यश सुन चले आये हैं, आज्ञा हो तो अपना गुन सुनावें."

श्यामसुंदर बोला "यह तो अच्छी बात है मेरा भी मन बहलेगा. तो अब होने दो पर तुम तबला ले लो."

मकरंद तबला के बजाने में क्षिप्रकर था और सम विषम तालों का ज्ञान भी था. उधर वीनाकंठ ने भी सितार ठीक किया और श्यामसुंदर के आज्ञानुसार यह ग़ज़ल गाई और बजाई.

ऐ तबीबो मेरे जीने के कुछ आसार नहीं
मत करो फिक्रो दवा
उस मसीहा को दिखा दो तो कुछ आज़ार नहीं
अभी है चाव [illegible]

कितना चाहा कि तेरे इश्क़ में मर जाएँ हम
पर निकलता नहीं दम
सच तो यों है कि हमें इश्क़ सज़ावार नहीं
तेरी तक़सीर है क्या
ऐ सनम तू ही मेरी शक्ल से रहता है रुका (रुसा)
है अजल भी तो खफा
बेवफ़ा तुझ सा जहाँ में कोई दिलदार नहीं
कीजिए किससे गिला
फस्ले गुल की न क़सम में मुझे दे खुशख़बरी
या है वे बालो परी
लायके सैरे चमन अब ए दिलफ़गार नहीं
क्यों रुलाती है सबा
सब वजादार तेरे आके क़दम चूमते हैं
मैं तो आशिक़ हू तेरा
अपनी नज़रों में कोई तुझसा तरहदार नहीं
है क़सम खाने की जा
शमारुख़ का तेरे ऐ गुल! कोइ परवाना नहीं
और अगर हूँ तो मही
दामे काकुल का तेरे कोई गिरफ्तार नहीं
पेंच हम पर ए पड़ा
क़त्ल ही गर मेरा मंज़ूर है ऐ उरविदा साज़
खैर हाज़िर है गुलू
कोई अरमां मुझे जुज़ हसरते दादार नहीं
रुख से परदा तो उठा
देख पछतायगा मूनिस न तू दे मुफ्त में जा
तर्क कर इश्क़े बुतों

फायदा इसमें सिवा रंज के ऐ यार नहीं
रख नज़र तू ए खुदा—

इसको बड़े ध्यानपूर्वक सुना, उन्हीं साँस ली और उन्हें किसी प्रकार विदा दे आप अकेले ही लेट गए. अब दस बज गया था गीत सुनते सुनते मेरी आँख नहीं लगी थी. अंत को जब सब उठ गए श्यामसुंदर विलाप करने लगा—

"आज की रात कैसे कटेगी इस गीत ने तो और मुझे बेकाम कर दिया—रह रह के मुझे प्रानप्यारी की सुधि आती है. यह रात मुझे साँपिन सी हो गई मुझे कुछ भी नहीं सुहाता. हायरे ईश्वर! क्या करूँ कहाँ जाऊँ. मैं अब जी नहीं सकता. प्यारी! प्रानप्यारी! हाय! क्या तुम्हें दया नहीं आती बस हो चुका, इतना व्यर्थ क्यों सताती हो हायरी पापिन! मैं कुछ भी न कर सका. तूने मेरी कुछ दया न देखी उस दिन की करुणा भूल गई? ठीक है इष्ट देवता का मन पाषाण से भी कठोर होता है. अब मेरे लिए कौन सी दिशा रह गई है जिधर जाऊँ." इतना रोकर हाथ में तरवार उठा कर कहने लगा "हायरे निर्दई काम! तूने मुझे क्या का क्या कर डारा. देवी! अब तू ही मेरे कंठ में लग जा और मेरे दुःख का अन्त कर. तू भी आज लौं ऐसे कोमल कंठ में न लगी होगी. आज इस विरही की गलबाहीं दे विरह को हटा, तेरी धार न बिगड़ैगी मैं फिर सान धरा दूँगा. पर मेरी कही तो कर—पादालिप्त चंडिके! क्या तू भी मेरी बैरिन हो गई? लोग तो देवी की स्तुति और पूजा करके अपने सब दोष छुड़ाते हैं—मैंने इतनी तेरी स्तुति की, तू तनिक भी न पिघली, ठीक है—"दुर्बले देवघातक।"—मैं आज दुर्बल हूँ न."
इतना कह तरवार की धार को ज्यों ही गले से लगाया बिचारा ऊधो पहुँच कर हाथ रोक लिया श्यामसुंदर चिहुँक पड़े कि यह आधी रात को और कौन आपत्ति आई, ऊधो को देख बोले—"तू इतनी रात को

कहाँ आ गया मैं तो अब—" ऊधो ने बात काटी और कहने लगा—"इसी लिए तो आया—देखिये श्यामा वह अटारी पर चढ़ी चढ़ी आपकी सब व्यवस्था देखती थी सो उसने मुझे सुलोचना के द्वारा कह कर शीघ्र पठाया—वह आपका तरवार उठाना देखती थी—"

श्यामसुंदर ने बड़ी प्रीति से पूछा—"कहो क्या श्यामा का सदेसा है ? वह काहे को कुछ कही होगी . मैंने उसे चीन्ह लिया—वह बड़ी पापिन और कपटिन हो गई है . न जाने उसके मन में क्या सूझा है जो मेरे से दीन की तनिक सुधि नहीं करती—

ऊधो ने कहा—"महाराज आप ऐसे शीघ्र ही अधीर हो जाते हैं तो फिर कैसे काम होगा . उस दिन क्षण भर श्यामा के पत्र के आने में विलंब हुआ तो आप ने निर्जन स्थान में जा मकरंद के गले से लग कितना विलाप किया—"

"हाँ किया तो सही था पर इसका कौन देखनेवाला है—'वन में मोर नाचा किसने देखा' इतने पर भी तो उस कोमल चित्तवाली को दया न आई" यह श्यामसुदर ने उत्तर दिया .

ऊधो बोला—"महाराज सुनिये श्यामा ने यह कहा है कि तुम जाकर उन्हें समझा देव में अवश्य उन्हें मिलूँगी और धीरज धरें कल्ह कोई न कोई उपाय निकाल ही लूँगी".

श्यामसुंदर ने कहा "कह दे कि यदि कल्ह तक उत्तर न आया तो मेरी तिलांजुलि ही देनी पड़ेगी . तू जा मैं अब जैसी नींद लूँगा रात और सेज दोनों साक्षी रहेंगी".

ऊधो चला आया . श्यामसुंदर मुख ढांक बड़ी देर तक सोचते रहे, राम राम कर रात काटी इस पाटी से उस पाटी कराह कराह समय बिताया. मैं उनकी दशा कहाँ तक लिखूँ (कहूँ) उन्हें मेरे बिना एक छिन दिन की भाँति और एक दिन कल्प के समान बीतता था . भोर हुआ .

सब लोग अपने अपने काम में लगे पर वे अभी तक सेज ही पर पड़े हैं. रामचेरा ने बरबस उठाया, मुख हाथ धुलाए, कुछ दुग्ध पान करके फिर भी लेट रहे राजकाज सब छूटा. ध्यान मेरा लगा के हृदय का कपाट बंद कर लिया. मुझे भी चिंता हुई. आज जो कुछ बात नहीं होती तो वे अवश्य आत्मघात कर लेंगे. इतना सोच भोजनोत्तर सुलोचना के घर गई और एक पत्र श्यामसुंदर को लिख कर उसी के द्वारा भिजवा दिया. यह पत्र कुछ विचित्र नहीं था, केवल सहेट का सूचक था. प्रकाश करने का प्रयोजन कुछ नहीं, समय तो साँझ का ठहरा था—स्थान "धीर समीर"—वंशीवट के उस पार. ग्रीष्म के दिनों की साँझ कैसी मनोहर होती है, यही समागम का उत्तम समय था. चित्रोत्पला मंद मंद बहती थी. तरल तरंगों में सफरी उछलतीं थीं, हंसों की श्रेणी—चक्रवाक के जोड़े, कुररियों की कतार पार पार पर बैठी शोभित होती थी.

आर्या

सुभग सलिल अवगाहन पाटल संगम सुरभि वन की पौन।
सुखद छाहरे निदिया दिवस अंत रमनीय न भौन॥
तनिक तनिक करि चुंबन केसर सुकुमार डारन पै भौंर।
सदय दलित मधु मजरि सिरिसा सुमन पर रहैं भौंर॥

ऐसे समय में श्यामसुंदर का और मेरा समागम विधि ने रचा था. दिनकर-कर ने पश्चिम दिशा के मुख में गुलाल लगा दिया. संध्या समय के पश्चिम दिशावलंबी मेघ नाना प्रकार के वर्ण दिखलाने लगे. सूर्य के रथ का पिछला भाग ही केवल दृष्टि पड़ता था. पूर्वाशा को छोड़ सूर्य नायक ने पश्चिमदिगंगना को सनाथ किया; यह भी इस नायक को पाकर रजनीपट मंडप में जा छिपी मानो मुझे समागम की पाटी सिखा दी; मैं अपने जी में डरी कि प्रथम समागम का आगम कैसे होता है—हँसी—मुसकिरानी—संध्या के समान जपा के सदृश लाल वसन धारन

किए, सुलोचना आगे और वृद्धा पीछे बीच में दोनों के मैं हो गई, जैसे दिन और रात्रि के बीच में संध्या हो श्यामसुंदर ने दूर ही से देखा— उठे बैठे इधर उधर देखा, फिर मेरी ओर देख कर खड़े हो गए, मैं अब निकट पहुँचती जाती थी, मेरा भी सकुच के मारे मुँह नीचा होता जाता था—पर श्यामसुंदर को बिन देखे लोचन कल नहीं लेते थे . सखियों के बीच में बार बार किसी न किसी मिस से देख लेती थी अब बहुत ही निकट गई . उनकी (उन्होंने) मेरे तन को देख चिरकाल की प्यास बुझाई और मुझे झपट कर अंक से लगा लिया—वाह रे दिन—धन्य है वह घरी जिसमें इस आनंद की लूट हुई मैं उनके और वे मेरे बदन को देख देख भी नहीं अघाते थे. मैं चपकमाल सी उनके हृदय से लपट गई ! प्रथम समागम में भी इतनी ढिठाई स्वभाव वश—या केवल चतुराई के कारन होती है, पर मैं इस नवीन संगम के दिन यद्यपि नवोढ़ा रही तौ भी मुझे श्यामसुंदर ने पहले से सब कुछ सिखा दिया था . मैंने कहा—"प्यारे अपने जी की पीर मिटा लो" पर उनने कुछ उत्तर न दिया वे अवाक्य हो गए उन्हें कोई उत्तर न सूझा, केवल ललचौहीं और प्यासी दृष्टि से मेरी दृष्टि पर टकटकी लगाए रहे . जुगल त्रिलोचनों पर जुगल कमल सनाल समर्पण किए अथवा तन सरोवर में पैठ चक्रवाक के दो बच्चों को हाथ से पुचकारते . चुंबन किया आलिंगन किया—मेरा तो कम अब वही हाल हो गया था जैसा पजनेस ने कहा है .

> "बैठी विधुवदनी कृशोदरी दरीची बीच
> खींच पी निसंक परजंक पर लै गयो।
> पजन सुजान कवि लपटी लला के गरे
> झपटी नुनीवी कर जघन सवै गयो।
> गोरो गोरो भोरो मुख सोहै रति भीत पीत
> रति क्रम रक्त ह्वै (कै) अंत सो रजै गयो।

मानो पोखराज ते पिरोजा भयो मानिक भी
मानिक भए पै नील मनि नग ह्वै गयो ॥"

अधिक क्या कहूँ श्यामसुंदर ने मनभाई कर लिया. मुझे भी उनका इतना मोह लगा था कि रात दिन समागम की कथा मुख से नहीं छूटती थी.

श्यामसुंदर ने मुझे अपनी अंक से वियुक्त नहीं किया. वे तो मुझे अपने हृदय से चपकाए रहे—बार बार चुंबन का लेना देना होता था मानों जोबन की हाट आज सेंत में लुटी जाती हो. वे मुझे गले से लगा बोले—"सुनो प्यारी—

जियतें सो छबि टरत न टारी
मुसकिराय मो तन गलबाहीं दै चूम्यौ जब प्यारी। ध्रुव।
करि इक ठौर बैठि रस बातें भुजा भुजा सो मेली
मुख में मुख उरसो उरझान्यो उरज गेंद अलबेली।
ताहीं समै निसंक अंक मधि भरि भुज जबै लगाई
ह्वै ससक करि बंक नैन मनु डंक मारि लपिटाई।
अधर अधर धर धरकत हियरो कच धर जबै बटोर्‌यौ
कदली चाँपि चारु रस सुंदर सिसकी भरति निहोर्‌यौ।
लाख लाख कर कवित छतियन मुतियन माल गिरानी
बाल बेलि मदनासव छाको सुरत सीर तन पानी।
श्यामाहू तन पुलकित पल्लव अगुरिन मुख निज ढाँपी
चूमत मोहि निवार्‌यौ ता छन मनौ प्रेम रस नापी।
जलकन कलित सरीर सरोरुह झलकत बुंद सुहाते
बिलुलित अलकन लपटि ललाटहि पौनहु सुखद बहाते।
तीर नीर ग्रीषम के बासर सिकता सेज सुहाई
मनो मदन निज काम जानि कै मुक्त कूर बगराई।

तापर बहत बयार सुपावन सुरत परिश्रम टारी
जगमोहन सो दुर्लभ सपने सुख सुगम बलिहारी।"

इसका मेरे सामने एक चित्र सा खिच गया. श्यामा के विराम लेती ही वह प्रचंडा देवी जिसका वर्णन कर चुके हैं और जो हमें स्वप्न में मंत्र बता गई थी प्रकट हुई, बड़े बड़े स्वेत स्वेत दाँत चमके "दुर्दंद-दानोज्ज्वला"—विटप की शाखा से लंबे लंबे बाहु पसार जादू की छड़ी ज्योंही निकाल श्यामा की चोटी से छुआया बादल छा गए अंधकार छा गया और वह मनमोहिनी प्रानप्यारी जीवन अवलंब की शाखा श्यामसुंदरी श्यामा लोप हो गई—तिमिर ने सब लोप कर दिया जिधर देखो उधर अंधकार

इति द्वितीय स्वप्न ।

अथ तृतीय प्रहर का स्वप्न

"जिनके हित त्यागि कै लोक की लाजहिं सगही संग में फेरो कियो।
हरिचंद जू त्यों मग आवत जात में साथ घरी घरी घेरो कियो।
जिनके हित मैं बदनाम भई तिन नेकु कह्यौ नहिं मेरो कियो।
हमैं व्याकुल छोडि कै हाय सखी कोउ और के जाय बसेरो कियो ॥"

हा ईश्वर ! क्या यह स्वप्न था कि प्रत्यक्ष "हमैं व्याकुल छोडि के हाय सखी कोउ और के जाय बसेरो कियो"—इसके क्या अर्थ थे. यह कौन सा मंत्र था किसने कहा, कब कहा, दिनमें कहा कि रात में; सामने कहा कि पीठ पीछे; कानमें कहा कि और कहीं; मुझे कुछ स्मरण नहीं. सोचते सोचते ध्यान सागर में एक सीप हाथ लगी उसको खोलते ही बडे बडे मोती निकले—इतने बडे थे कि दो दो आँख रहते भी न सूझ पड़े. अब क्या करूँ पाना और न पाना बराबर था, पाई के क्या किया जो किसी काम न आए. इच्छा हुई कि किसी श्वेतद्वीपवाले की दूकान से एक जोडी चश्मा मोल लाते तब तो यह करिश्मा भी दिखता.

दूकान कहाँ थी जो ऐसे शीघ्र मिलती पर रेल तो थी ही उसी पर बैठ के चलने की इच्छा हुई—इतने में कलकत्ते के स्टेशन पर मनोरथ पर बैठ पहुँचे. स्टेशन के कपाट बंद थे, ये लोहे के बने थे ऐसे पुष्ट थे कि नष्ट के भी दुष्ट बाप से न खुल सकें. इन्हीं कपाटों में कई बार माथा फोड़ा—हथियार लेकर तोडा, पर यह जोडा ऐसा था कि तनिक न टसका. मन में सोचा कि सूर्य का सतमुँहा घोडा आवै तब तो यह दुमुहा द्वार खुलै पर आवै कैसे . यही (इसी) सोच में तो एक चौकडी की कड़ी बीत गई . वह (उस) बूढी ने तो हमें अनेक प्रकार के जादू सिखा ही दिये थे—सिखाना क्या बरन सब कामरूप कामाक्षा की झोली में

भरकर मुझे दे गई थी, मैंने उसी का स्मरण किया झोली तो ओली ही में धरी थी . वीर बजरंग और श्यामा देवी का नाम-स्मरण कर ज्यों ही हाथ डाला मंत्र की एक पुड़िया हाथ लगी, पुड़िया को खोलते ही उसमें से मंत्र की धुनि होने लगी . इस समय तो सतमुहा घोड़ा बुलाना था, यह मंत्र याद कर लिया .

"ॐ उच्चैःश्रवाय नमः एहि एहि फाटकं खोलय झोलय स्वाहा"

इसका जप गोमुखी में हाथ डार के करने लगा . अष्टोत्तर-शत भी न पूरने पाया कि एक सहस्र किरनवाले भगवान मरीचिमाली अपने घोड़े को कोड़े फटकारते पहुँच ही गये, हाथ जोड़ कर बोले "क्या आज्ञा है"—मैंने कहा "इस स्टेशन के निगड़ कपाट तो खोलो." उनने सुनते ही रथ हांका—घोड़ा तो बड़ा बांका था—खोलते खोलते हार गया, टापें मारी—लत्ती फेंकी—बचा को ऐसी चोट लगी कि फिर लौट कर हरदी अजवाइन से सेंकी—छठी का दूध याद किया होगा . घोड़ा का बल निकल गया बचा से कुछ भी न हो सका. मैंने कहा "यदि तुम में यही बल था तो आए क्यों—वहीं बैठ रहते व्यर्थ हमें कष्ट दिया अब अपना सा मुख ले जाइए ."

इतना सुनते ही सूर्य भगवान भागे. क्या करें विचारे मुह तो विलायती अनार सा सूख गया था, ऐसा रथ भगाया कि फिर पश्चिम समुद्र में जा डूबे—लाज ऐसी होती है—पराभव की लाज के मारे मुह सदा नीचे ही रहता है. अब रेल के खुलने का खेल निकट था, इसी से जी में और चटपटी समानी दूसरा मंत्र याद पड़ा "गंगजराजायनमः"—इसे भी पूर्व रीति पर जपा पर ज्योंहीं गोमुखी में इसके जपने की जुगत की गौमुखी सौमुखी हो गई सब पाँजर झाँझर हो गए, माला नीचे लटक पड़ी. मुझे यह ज्ञान न रहा कि यह गोमुखी साक्षात् ब्रह्मा के (की) झोली से निकली थी. मुझे क्या पड़ी थी जो उसमें हाथ डाल कोई मंत्र जंत्र जपते. मेरा तो अपवित्र हाथ था डालने के साथ ही जल भुन

जाता. पर यदि ऐसा साहस न करता तो श्यामारहस्य की थाह भी न मिलती. रुद्रयामल और कालिकातंत्र तो अभी हरितालिका के दिन के बने थे मैं बड़े घनचक्कर में पड़ गया. पर इसकी क्या चिन्ता फक्कर तो होना ही था, जप न हो सकी. क्योंकि उस गोमुखी में अनेक छिद्र हो गए थे. वाहरे विष्णुशर्मा! क्यों न हो! तू ही तो एक मेरा नवखंड पृथ्वी में मित्र था. लक्ष्मी जी की पूजा करते करते स्वयं नारायण को भी राजी कर लिया अब क्या बचा था जिसके पीछे तू दौड़ता. मैं तो आम की फुनगी में लटक गया भौंरों के साथ उड़ने लगा—काले काले कपोत पोत में धँस कर उड़ते थे. मंदिर के कंगूरे में बैठ कर अंगूर खाने लगा. हाथ जोड़ कर कपोतो को बुलाया—कपोत कब विश्वास करते थे? वे दूर ही से देख कर उड़ जाते. मैंने बहुतेरा अपना सा बल किया. बड़े बड़े रस्से मद्रास और माड़वार से डाक पर मगवा कर बांधे पर फंदा न लगा. जिस चिड़िया को फाँस लगाई वही चिड़िया निबुक गई. मानों उन्होंने महावीर से निबुकना सीखा हो.

"निबुक चढ्यो कपि कनक अटारी
भई सभीत निशाचर नारी"—

इस प्रेमफांस से निबुकने के लिए सिवाय बजरंगबली के और कौन समर्थ था—हाँ—सो भी श्यामा और श्यामसुन्दर की (के) आशीर्वाद से. अंत में एक कपोत को पोंछ पुचकार के विश्वास दिया. संदेशा भेजने के लिए इनसे बढ़के और कोई विहगगणों में नहीं है. यह चतुरता की कला इनकी रूम रूस के युद्ध में भली भाँति लखी गई थी. एक कपोत से कहा 'तू जाकर किसी बड़े भारी ऋषि को बुला ला कि जरा मेरी गोमुखी को टाँक तो दे.' कपोत उड़ा उड़ते उड़ते कैलास पहुँचा वहाँ महादेव से कहा "कोई ऐसा मुनि बताइये जो गोमुखी सी दे. वे जप करने को ज्योंही बैठे उनकी माला नीचे लटक पड़ी अब वे जप बिना समाप्त किए भोजन नहीं करते."

महादेव जी ध्यान धरके कहने लगे "इसका सीनेवाला तुम्हें तुड-दष्ट्रा नामक देश में मिलैगा वह यहाँ से सौ कोस पर दक्षिण दिशा में रहता है ." कपोत पल भर में उड कर पहुँच गया . दष्ट्राकराल का राजा विरागचन्द्र गौतममुनि का चेला था वात्स्यायन का भाई—वसिष्ठ का बाप—नारद का बहनोई और विश्वनाथ का गुरुभाई विराग चन्द्र से भी यही कहने लगा विरागचन्द्र ने अपने पूर्वोक्त ज्ञातिबन्धुओं को बटोरा मत्र किया . सूचीकार के ढूँढ़ने को ए सब बहुत इधर उधर दौड़े . पर हार मान कर घर बैठे . जब ऐसे ऐसे मुनियों का बल विफल हो गया तो मनुष्यों की क्या गणना थी ! अब क्या करता ? गोमुखी में हाथ निकाला उक्त मन्त्र का जप करते करते १० वर्ष बीत गए एक वर्ष होम करते बीता बारहें बरस मंत्र सिद्ध हो गया इन्द्र के अखाडे का ऐरावत गजराज झूमता हुआ आया . यह पल्कदता हाथी मत्त था . धर्म का (की) ध्वजा बाहर के दातों के (की) भाईं निकाले पर भीतर के दसनों के तुल्य कपट और विश्वासघात तथा अधर्म का पक्ष दबाए उपस्थित हुआ . मैं इसे देख उठ खड़ा हुआ . यह उपेंद्र का गजराज था , भला क्यों इसे देख आसन न देता . नहीं तो कहीं दुर्वासा सा कोई आकर शाप दे देता तो फिर मैं क्या करता गज के दोष से दुर्वासा मुनि ने इन्द्र को शाप दे ही दिया था. भला क्या इन्द्र ने दुर्वासा की दी माला भूमि पर फेंक दी थी या गज ने जो सामान्य पशु था ?—पर बड़ों को कौन कह सक्ता है चाहे जो करैं, चाहे आकाश में महल बनवावैं उन्हें तो 'रवि पावक सुरसरि की नाईं " है. बाबा जी नई बालाओं को पूरा भोग भी देते हैं तौ भी बाबा जी ही बजते हैं—कहावत है कि "भाई को भाई भई—माई बुलावन जात है" चमारिन , डोमिन, पासिन, धिर-कारिन, धोबिन तेलिन सभी गंगा के तुल्य हैं—

"आशाखचर्मांकितबाहुदण्डा गृहे समालिंगितबालरण्डा ।
मुण्डा भविष्यन्ति कलौ प्रचण्डाः—"

बस हुआ ! हाँ तो फिर मैंने गजराज महराज को नमस्कार किया और उस (वह) फाटक खोलने की प्रार्थना की . लोभी पशु एक पसर धान के लालच में झट दतूसर फाटक पर लगा ही तो दिया (विश्वास न हो तो कर्पूर तिलक का वृत्तांत हितोपदेश में देख लो) फट् से फाटक फट पड़ा खुल गया . दूरबीन लगाने की भी आवश्यकता न पड़ी विना इस यंत्र के -उस पार का सब कुछ उघर गया . फाटक तो खुलाही था—भगवती भागीरथी गंगा की भी धार निकल पड़ी अब तो ऐरावत जी की नानी सी मर गई . कलकत्ता के निकट की तो बात है . भगीरथ कई सहस्र वर्षों तक तप करके पाए इधर केवल 'गं' बीज के जप मात्र से शीघ्र ही निकल पड़ी—ऐरावत लोट गया—स्नान किया हाथियों का मन जल में बहुत रमता है—किनारे की सब कमलिनी क्रम से उखाड़ उखाड़ कौर कर गए ऐसा जान पड़ा मानों

"चित्रद्विपा पद्मवनावतीर्णाः
करेणुभिर्दत्त मृणालभंगाः"

गंगा की धार फाटक के आर पार बह गई . मैंने तो जाना कि बस स्टेशन भी बहा ले जायगी पर मेरे भाग्य से बच गया ! बीच धार में शेष निकला तब तक भूमि के भार सम्हारने की एवजी कूर्म को दे आया था—शेष पर भगवान् जगन्मोहन विष्णु सोए थे . लक्ष्मी जी पाँव पलोटती थी—नाभिकमल से मृणाल निकला—फिर कमल का फूल हो गया - कमल का ध्यान करके देखा तो उसी अलज में से अलजासन निकले—चारों वेद पाठ करते—पर मधुकैटभ दैत्यों ने इनके भी दाँत खट्टे किये . ब्रह्मा भागे दैत्यों ने पीछा किया जोतसी लोग सायत विचारने लगे पर ज्योतिष का उनको कुछ बोध थोड़ा ही था . अगहन की सायत सावन भादों ही में धरी . शुक्र का भी उदय नहीं हुआ था, अगस्ति का भी उदय न था—पंथ का जल भी नहीं सूखा था—दैत्यों ने ब्रह्मा का ऐसा पीछा किया जैसे बालि ने मायावी का किया

था—न मानो तो वाल्मीकि रामायण पढ़ो—मैं भी पीछे पीछे गया. महा फाल्गुण ऋषि के चेले शाक्य मुनि की कंदरा में जा घुसे—उनके घुसते ही मैंने द्वार पर एक महा शिला लगा फिर उसी स्टेशन पर आ गया. विष्णु से सब हाल कह दिया. विष्णु भी उन्हीं दैत्यों को मारने हेतु गजराज पर सवार हो लक्ष्मी को छोड़ चले गए अब बिचारी लक्ष्मी शेषनाग के पाले पड़ी—यदि मैं न होता तो वह उसे सांगोपांग लील जाता. जैसे दमयंती को अजगर से व्याधे ने बचाया—पर अंत को व्याधा अनाचार करने लगा. दमयंती ने शाप देकर भस्म कर दिया, पर मैं भस्म तो नहीं हुआ केवल कोयला होकर पड़ा रहा. मैंने प्रार्थना की लक्ष्मी प्रसन्न हुई और शेष का विष खींच मुझे सदेह कर फिर सजीव किया. यही तो आश्चर्य था कोई अमृत पीने से जीता है मैं विषपान कर जिया. धन्य है री मायादेवी धन्य है! इतने ही में गंगा की ऐसी लहर आई कि लक्ष्मी उसी तरंग में बह गई—मैंने शोच किया रेल आई टिकट ली चार रुपये नौ आने साढ़े दस पाई देना पड़ा. रेल पानी पर चलने लगी. गंगा बहते बहते ब्रह्मपुत्र से जा मिली और अंत को सहस्र धारा हो सागर में जा गिरी—वहाँ सौतें तो बहुत मिलीं पर गंगा की तृप्ति कब होती है, एक सागर से दूसरे दूसरे से तीसरे इसी तरह सातो सागर घूमी—अंत को फिर क्षीरसागर में पहुँच कर विलास करने लगी. मैं भी गंगासागर के मुहाने तक गया. मुहाने में. घुसी—वाहरी रेल.

"अग्नि वायु जल पृथ्वी नभ इन तत्वों ही का मेला है
इच्छा कर्म संजोगी इंजिन गारड आप अकेला है,
जीव लाद सब खींचत डोलत तन इस्टेशन झेला है
जयति अपूरब कारीगर जिन जगत रेल को रेला है."

—'दूसरा स्टेशन दिखाने लगा, विचित्र लीला, अब जल से थल हो गया. उस स्टेशन के स्तंभ दिखाने लगे, स्टेशन तो हैमिल्टन साहब

ी दूकान था . वाहरे ईश्वर ! मनोरथ पूरा हुआ. चश्मा मिलने की आस
लगी. दूकान पर उतरें, एक गोरी थोरी हँसवाली निकल आई, इस
गोरी के पीछे एक पुछ भी थी. मैंने तो ऐसी स्त्री कभी नहीं देखी थी.
रूख मनोहर और वदन मदन का सदन था . इस कामिनी के कुचकलशों
पर दो बंदर नाचते थे; इनके नाम दंभाधिकारी और पाखंड थे.इन बंदरों
के (की) पूछ मे कपट और घात नाम के दो बच्चे और लटकते थे . मैंने ऐसी
लीला कभी नहीं देखी थी. करम ठोंका आश्चर्य किया. साहस कर दूकान के
भीतर जा पूछने लगा "गोरी तेरी दूकान में एक जोड़ चश्मा मिलैगा?" उसने
त्यूरी चढ़ा के उत्तर दिया "मूर्ख द्वापर और त्रेता में कभी चश्मा था भी
कि तू माँगता है. तब सभी लोगों की दृष्टि अविकार रहती थी. यह तो
कलियुग में जब लोग आँख रहते भी अंधे होने लगे तब चश्मा भी किसी
महापुरुष ने चला दिया . मुझे नहीं जानता मैं पाखंडप्रिया अभी श्वेत
द्वीप से चली आती हूँ, मैं फणीश की बहिन हूँ, देख विना चश्मा के तू
.ख लेगा कि मैं कैसी हूँ और मेरा रूप कैसा आश्चर्यमय है. भाग जा
नहीं तो—हाँ तमाशा बताऊँगी". मैंने कहा "हा दैव ! किस आपत्ति में
तूने मुझे डाला". झट श्यामा का स्मरण किया और ज्योंही गंगासागर
संगम में डुबकी लगाई पाप कट गए सब भ्रम नाश हो गया, रेल का
खेल बिला गया फिर भी वही श्यामा और मैं—फिर भी वही पर्वत
और नदी—और फिर भी वही चांदनी की रात—रात के दोपहर बीत
चुके थे, तीसरा पहर था.

जिधर देखो उधर सूनसान—पशु पछी सब योगियों के (की) भांति
समाधि लगाए अपने अपने स्थल में बैठे थे. सच पूछो तो यह समय
ऐसाही था जैसा हरिश्चन्द्र ने नीलदेवी के पंचम दृश्य में कहा है .

राग कलिंगड़ा, तितला
सोओ सुखनिंदिया प्यारे ललन।
नैनन के तारे दुलारे मेरे बारे,

सोश्रो सुखनिंदिया प्यारे ललन।
भई आधी रात बन सनसनात,
पशु पंछी कोउ आवत न जात,
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात
पातहु नहि पावत तरुन हलन।
झलमलत दीप सिर धुनत आय,
मनु प्रिय पतंग हित करत हाय,
सतरात अंग आलस जनाय,
सनसन लगी सीरी पवन चलन।
सोए जग के सब नींद घोर,
जागत कामी चिंतित चकोर,
विरहिन विरही पाहरू चोर,
इन कहं छिन रैनहु हाय कल न।

वर्षा के बादरों ने अपना आगम जनाया; विरही लोग कादर हो हो चादर से अपना मुँह छिपा छिपा लगे रोने; संजोगी अपनी अपनी प्यारियों के साथ सादर हंसने बोलने लगे, मानों अपना रावचाव दिखा के वियोगियों को लजाते और उनके दुस्सह दुःख पर हँसते थे . जो हो ये दिन भी न रहेंगे . यह तो रथ के चक्र सी मनुष्य के भाग की गति है— कभी सुख कभी दुःख, कभी गाड़ी नाव पर और नाव कभी गाड़ी पर चलती हैं. हाँ—आषाढ़ के गाढ़े गाढ़े मेघ गर्जने लगे . वियोगियों के जी लरजने लगे, आकाश में बक की पाँति उड़ती ऐसी जान पड़ती थी मानों काली ने कपाल की माला पहिनी हो . बिजुली चमकने लगी—बादर बार बार घहराने लगे , श्यामा ने कहा—"भद्र ! तुम इतनी देर तक कहाँ गए थे . देखो पावस आ गई , विरहियों के प्रान अब कैसे बचैंगे ? सुनो—

लागैगो पावस अमावस सी अंध्यारी जामे
कोकिल कुहुकि कूक अतन तपावैगो।
पावैगो अघोर दुःख मैन के मरोरन सो
सोरन सो मोरन के जिय हू जलावैगो।
लावैगो कपूरहु की धूर तन पूर घिसि
भार नहि कोऊ हाय चित्त को घटावैगो।
टावैगो वियोग जगमोहन कुसोग आली
विरह समीर बीर अंग जब लागैगो।

और भी—

को रन पावस जीति सकै लहकारैं जवै इत मोरन सोरन।
सोरन सों पपिहा अधरात उठै जिय पीर अघोर करोरन।
रोरन मेघ चमंकत बिज्जु गसे अब नैन सनेह के डोरन
डोरन प्रेम की आय गहो जगमोहन श्याम करो दग कोरन॥"

मैंने कहा—"देवि! मुझे ज्ञात नहीं मैं कहाँ था और कौन कौन आपत्ति झेल रहा था, तुम तो अंतरजामिन हीं सब जान ही गई होगी. तुम्हारा नाम स्मरण करते सब मोहतिमिर नाश हो गया. फिर तुम्हारा दर्शन पाया जैसे फणी अपना मणी पा जाय. तो ठीक है पावस तो आ गई अब चलो इस गुफा में बैठें, चलते नहीं तो पानी के मारे तुम्हारी कथा भी न सुन सकेंगे."

यह सुन श्यामा अपनी वहिन और वृंदा के साथ उठी और इसी पर्वत के (की)कंदरा में बैठी. यह कंदरा बड़ी विचित्र थी मानौं विश्वकर्मा ने स्वयं श्यामा के बैठने को बनाया था. नाना प्रकार के पक्षी गान करते थे. मत्त हंस सारस पपीहा कोइल इत्यादि पक्षी नीचे बहती हुई चित्रोत्पला में नहाते और कलोल करते. प्रकृति का उद्यान यहीं था. बस—

साल ताल हिंताल तमालन बकुल धवा पुनागा
चम्पक नाग विटप जहँ फूले कर्निकार रस पागा.
कचन गुच्छ विचिन गुच्छ जहँ किसलै लाल लखाहीं
लता भार सुकुमार चमेलिन पाटल विलग सजाहीं.
तरुण अरुण सम हेम विभूषित दूषित नहिं कोउ भाँती
वेदी लसत विदूर फटिकमय सलिल तीर लस पाती.
जहँ पुरैन के हरित पात बिच पकज पाँति सुहाई
मनु पन्नन के पत्र पत्र पै कनक सुमन छवि छाई.
नील पीत जलजात पात पर विहँग मधुर सुर बोलैं
मधुकर माधवि मदन मत्त मन मैंन अछर से डोलैं.
हरिचदन चदन ललाम मय पीत नील वन बासै
स्यदन विविध वदन जगवदन सुखकदन दुख नासै —

हम लोग सब इसी में बैठ गए मैंने कहा अब पावस की शोभा देखो —

जलनिधि जल गहि जलधर धारन धरनीधर धर आए
पाटल पयोधर नवल सुहावन इत उत नभ घन छाए.
फरफरात चचल चपला मनु घन अवली दृग राजै
गरजत घूमि भूमि छ्वै बादर धूम धूसरे साजै
गज कदम्ब मेचक से अबुद नत लखि नभ में छाए
को न गई पिय वल्लभ ढिग निशि करि अभिसार सुहाए
श्याम जलद नव सुदर हरिधनु सुखद सरस मधि सोहै
श्याम सरीर श्यामता हर मनु विविध मनिन जुत मोहै.
वारिद वृद बीच बिजुरी बलि चचल चारु सुहानी
छिन उघरत छिपि जात छिनक छिन छटा छकित सुखदानी
नव तमाल सावन तरु तरलित धीर समीरहिं मानौ
विटपन छिपि छिपि जात मजरी छिन छिन उघरत जानौ.

विधुर वधू पथिकन को नीरद नीर नैन सो पेखैं
असुभ दरस वारिद गुनि जीवन अंत आपुनो लेखैं .
मानिनि मान नमन घन मारुत उपवन बनन नचावै
ललित विकच कंदल कुलकलिका जगमोहन अकुलावै .

श्यामा बोली—"आप तो बड़े प्रेमी और कवि जान पड़ते हैं ; पावस की अच्छी छटा दिखाई . आप का वर्णन मेरे जी में धस गया . मैं भी कहती हूँ सुनिये—

जलद पाँति धुनि संपति निज लहि कल आलाप सुहाई
किलकि कलाप कलापिन कुहुकत कोकिल काम कसाई .
बाजत मनौ नगारे सुनि धुनि पावसराज बधाई
श्रुति सुखदायक मोर पपीहा बग पंगति नभ छाई .
नव कदंब रज गगन अरुन करि अंबर सुखमा साजै
कंदल सुमन पराग सुरभिजुत जेहि लहि सब दुख भाजै .
अनुरागिन चित नव नव उपवन पौन प्रेम प्रकटावै
नवल नवेलिन मन मनोज मथि परसि अंग उपजावै .
नीरद प्रथम नीर के बूंदन मही रहित रज कीन्ही
ताप मिटाय सबै विधि धरनी आँगन सुख दै चीन्ही .
केतक चहुँ सोहत बन बागन जापै भृंग गुंजारै
गजरद से अति सेत मनोहर रागिन हृदय बिदारै .
घन घन अवलि विधुहन सों मनु खस्यौ खंड शशिकेरा
कुटिल शिखा अति पथिक भृंग सम आवत गिरत घनेरा .
कुटज पराग सुमन कन निर्भर चारु बुंद मनु राजै
पूरन ललित दलित मोती सित अनुपम सोभा भ्राजै .
मनु दधि रेनु सुहात मनोहर पियत भृंग मकरंदा
पावस सुखद समीर डुलावत श्यामा तन सुखकंदा ."

मैं श्यामा की कविता सुनकर दंग हो गया, मैंने ऐसी अपूर्व कविता कभी किसी स्त्रीगण के मुख से नहीं सुनी थी. मैं श्यामा और श्यामसुंदर की प्रेम कहानी सुन चुका था—बहुत जी में विचार किया. हाथ कुछ न आया मैंने कहा—"श्यामा, तुम्हारी कविता ने मेरे जी में छेद कर दिया—हाय रे दई ! आज श्यामसुंदर न हुआ नहीं तो तुम्हारे रूप और गुण दोनों की बलिहारी होता, पर यदि उनके (की) ओर से मैं यह कहूँ तो तुम्हें कैसा लगे ?

प्यारी पावस प्रबल प्रलय सम तुम्र बिनु मुहि दुखदाई
अब हू तो सुधि लेहु देव ए बादर बिरह बधाई.
नूतन अवलि नीप बन दस दिसि वारिद पट सरि धारे
निज रज बसन समान दियो गुनि सखी भाव दुख टारे.
गगन गहन गिरि गिरा गभीरन गरजत गरज गयदा
बीच बीच विचरत बन बिज्जुरी बिलग बिलग बक वृंदा
भीम भयानक भौनहु भाखत भादो भामिनि भोरी
तेरे रहित अतन तरकस तै तीर तान तन तोरी.
मृगनैनी मृगाक मन मंदिर मुचौ मधुर मुख मोही
परम प्रीति परतीत पीर पिय प्यारो परवस पोही.
चतुर चलाक चपल चपला चितचोर चोर चलु चीन्हो
छिप्यो छपाकर छितिज छीरनिधि छगुन छर छत छीन्हो
झन झनात झिल्ली झपावत झरना झर झर झाडी
ठसकि ठसकि ठटकी ठसकीली ठाठ ठाठ ठकि ठाडी.
डरत डरत डग डगरी डगरहिं डगमगात डहकानी
थरथरात थर थर थिर थाकी थम्हि थम्हि थहरि थकानी.
दई दगा दर दर दिल दाह्यौ दाहकि दहन द्रुम दामा
जोहत जगी जगत जमजामिनि जगमोहन जन जाना."

श्यामा ने कहा—"बस-बस—मैं सब जान गई—पर तुम यह तो मुझे कहो कि तुम कौन हो—मुझे बड़ा संदेह होता है—"

मैंने कहा—"अभी तुम अपनी कथा पूरी करो—अंत में कहूँगा जो कुछ कहना है—तुम्हारी कथा यद्यपि दुखदायक है पर सुनने को जी ललचाता है . इससे जब तक पूरी न सुनावोगी मैं कुछ भी न कहूँगा . जैसे इतनी दया कर इतनी कही वैसे ही शेष तक कृपा कर कह डारो ."

श्यामा बोली—"श्यामसुंदर की प्रीति दिन दिन शुक्ल पक्ष के चंद्रमा सी बढ़ती गई—बार बार मुझसे समागम हुआ , बार बार मैंने उनकी तपन बुझाई . अब तो वे ऐसे विकल हो गए थे कि बिना मेरे एक छिन भी न रहते . जब देखो तब मेरी ही बात—मेरा ही ध्यान—मेरा ही मान—तान में भी मेरा नाम—कविता में भी मैं—श्यामसुंदर के नैनों की तारा—श्यामसुंदर के नैन चकोर की चंद्रिका—उनके हृदय-कमल की भ्रमरी—और कहाँ तक कहूँ उनको जो कुछ थी सो मैं ही . उन्होंने ऐसा प्रेम लगाया जिसका पारावार नहीं .

> "जागत सोवत सुपनहू सर सरि चैन कुचैन
> सुरति श्यामघन की हिए बिसरे हू बिसरैन ."

और मेरी भी यही दशा हो गई थी

> "जहाँ जहाँ ठाढ़ो लख्यौ श्याम सुभग सिर मौर
> उनहू बिन छिन गहि रहत दृगन अजौं वह ठौर .
> सघन कुंज छाया सुखद सीतल धीर समीर
> मन ह्वै जात अजौं वहै वह जमुना के तीर."

एक दिन श्यामसुंदर प्रातःकाल स्नान को जाते थे , मैं भी नहा के नदी की ओर से आती थी . हम दोनों गली में मिले . दिन निकल चुका था , पर उस समय वहाँ कोई न था . ज्योंही उनके निकट पहुँची बदन कँप उठा, आँसू भर आए और पिंडुरी अपने घर लगीं—इतने में

मेरी एक और सखी सावित्री नाम की पहुँच गई, हाथ भी कँपने लगे और माथे की गगरी गिर पड़ी . सावित्री ने मुझे थाम्ह लिया नहीं तो मैं भी गिर पड़ती . गगरी तो चूर चूर हो गई श्यामसुंदर हँस के चले गए . यह भेद किसी ने नहीं समझा . श्यामसुंदर ने उसी दिन मुझे यह लिख भेजा—

तन काँपे लोचन भरे अँसुआ झलके आय
मनु कदंब फूल्यौ अली हेम वल्लरी जाय .
हेम वल्लरी जाय कनक कदली लपिटानी
अति गभीर इक कूप निकट जेहि व्यालि निलानी .
निकसि जुगल गिरि तीर जासु पंकज जुग थापे
खेलत खंजन मीन तरल पिय लखि तन कापे .

यह उन्हीं की रचना थी मैं पढ़ के समझ गई और मनहीं मन मुसकानी लज्जित हुई . मैंने उनसे कहला भेजा कि इसका अर्थ समझा दो . वे बड़े आनंद से आए मुझे घर में न पाया मैं उस समय सुलोचना और वृंदा के साथ नहाने चली गई थी . श्यामसुंदर घर से फिरे और घाट की ओर चले—वहाँ पहुँचने ही मुझे वहाँ भी न पाया—कारन यह कि मैं तब तक नहा धो अपने घर चली आई . श्यामसुंदर निराश हुए घर लौट गए ऊधो को बुलाके उरहना दिया—

तरसत श्रौन बिना सुने मीठे बैन तेरे
क्यौं न तिन माहिं सुधा बचन सुनाय जाय
तेरे बिनु मिले भई झाझर सी देह प्रान
राखि ले रे मेरो धाय कंठ लपिटाय जाय
हरीचंद बहुत भई न सहि जाय अब
हाहा निरमोही मेरे प्रानन बचाय जाय
प्रीति निरबाहि, दया जियमें बसाय आय
निज जगत निरदई नेकु दरस दिखाय जाय .

ऊधो ने बहुत प्रबोध किया श्यामसुंदर रात भर विकल रहे. भोजन और नींद सपने हो गई. सुधि बुधि तन की भूलि गई. दूसरे दिन मैंने सुलोचना द्वारा सब वृत्तांत उनका सुना. बड़े सोच में रही—क्या करती कुछ उपाय नहीं था, पर उनके मन को संतोष करना मेरा मुख्य धर्म था. मैंने लिख भेजा कि वट-सावित्री के पूजन के पीछे भेट होगी. मैं—दिन सखी सहेलियों के साथ वट पूजने जाऊँगी तुम भी वहीं चलना. इतना ही लिख भेजा. मैं अपने जी में प्रसन्न हुई केसर का उपटन बदन में लगाकर केसर बदनी हो गई. शुद्ध स्नान कर पीत कौपेय की सारी पहिन वसंतवधूटी बन गई वृंदा ने मांग गुह दी, सिंदूर की रेख धर दी. सीस फूल खोंस लिया, नागिन सी चोटी पीठ पर लहराती थी. नेत्रों में काजर की रेख मात्र लगा ली. कानों में कर्णफूल सोने के—कंठ में विद्रुम और हेम की कंठी, सोने की हँसुली—श्यामसुंदर की दी कांचनी माला—लिलार में टीका—पटियों में बंदनी-हाथों में गुजरियाँ—पैरों में पैजनियाँ—बाजूबंद इत्यादि पहन के पूजा करने को वृंदा, सुलोचना, सावित्री, सत्यवती, सुशीला, मालती, मदनमंजरी, चंपककलिका, सुरतिलतिका इत्यादि सबों के साथ चली. वट का वृक्ष निकट ही तो था सब सहेलियाँ मंगलगीत गातीं चलीं. श्यामसुंदर ऊधो के साथ दूसरी ही बाट से पहुँचे. सैकड़ों के बीच में से उन्होंने मुझे चीन्ह लिया और उनके नैन किबिलनुमा की भाँति मेरे ही ऊपर छा गए—

"वाही पर ठहराति यह किबिलनुमा लौं डीठि"

और मेरी भी गति चातक चकोर सी हो गई थी—

'फिरे काक गोलक भयो देह दुहुन मन एक'

श्यामसुदर मेरी छवि पर रीझ गए आँख आँख से मिली और मन मन से, पर हाय रे समय ! हम लोग यद्यपि अति निकट थे बोलचाल न सके. पूजा समाप्त हुई. मैं उसी राह से अपने घर आई और वे भी

उसी राह से गए . वर्षा का आरंभ हो आया था—श्यामसुदर ने मुझे मिलने को लिख भेजा . मैंने भी यह उत्तर दिया—

तीर है न बीर कोऊ करैना समीर धीर
बाढ्यौ श्रमनीर मेरो रह्यो ना उपाव रे
पत्ता है न पास एक आवन की आस तेरे
सावन की रैन मोहि मरत जियाव रे
संगम में खोलि राखी खिरकी तिहारे हेतु
भई हौं अचेत मेरी तपन बुझाव रे
जान जात जानै कौन कीजिए उताल गौन
पौन मीत मेरे भौन मंद मंद आव रे ."—

इसको पढ़ श्यामसुंदर आनंदरूप हो गए . बार बार इस कवित्त को पढ़ छाती से लगाया और "धन्य भाग" कह किसी प्रकार से साँझ को नियत समय पर श्यामसुदर पहुँच ही तो गए . इस बार के सुख का पारावार नहीं लिखती (कहती), मुझे तो मानो साक्षात् बैकुंठ भी कुंठ जान पड़ता था . श्यामसुदर की बड़ाई में कुछ नहीं कर सकी—मेरी रसना उनकी प्रशंसा और सुख कहते कहते थक गई थी. पर हाय मैं ऐसी बेकाज ठहरी कि उनको मुँह बताने की भी न रही . उनकी भलाई और मेरी बुराई—उनकी सौजन्यता (सुजनता) और मेरी दुष्टता—उनकी दया और मेरी निर्दयता—उनकी कृपा और मेरी निठुरता—उनकी सचाई और मेरी झुठाई—उनकी दीनता और मेरी क्रूरता—उनकी हाय और मेरी हँसी—उनकी बड़ाई और मेरी नीचता—उनके दिल की स्वच्छता और मेरी कपटता (कपट)—उनका तलफना और मेरा हँसना—इन दोनों पार्टियों का सेतु हम दोनों की जीवन नदी में बाँधा जायगा और आचंद्रार्क दोनों की कहानी लोक में प्रसिद्ध रहैंगी . बस अब अधिक कहने से क्या होगा—संसार इसको जान बैठा . तो मैं अपनी कथा

कहती हूँ, सुनो . इस विषय में श्यामसुंदर ने जो कविता की वह तुम्हें बताती हूँ .

सोरठा

दूती बीजुरि रैन, सहचरि चिर सहचारिनी
जज्ञद जोतिषी बैन, सायत धरत पयान की.
तिमिर सुमगल बैन, तोम सदा झिल्ली रवैं
मुग्धे लहि मिलि चैन, छाँड़ि लाज पियकंठ लगि.

कुंडलिया

पैंया परि करि विनय बहु लाई वाहि मिलाय
जमुना पुलिन सुबालुका रही हिये लपिटाय
रही हिए लपिटाय मिटावत तनकी पीरा
मदनमंजरी चंदमालती श्रति रतिधीरा
सजनी राखे प्रान सींचि अधरामृत सैयाँ
मुरझत नव तन बेलि विरह तप सों परि पैंयाँ.

बरवै

सुभग सलिल अवगाहन पाटल पौन
सुखद छहरे निदिया सुरभित भौन।
रजनीमुख सजनी सो श्रति रमनीक
रमनी कमनी चुंवन बिनु सब फीक।
तनिक तनिक लै घूमा बकुलन भौंर।
श्रति सुकुमार डार पै मौरन भौंर।
सदय दलित मधु मंजरि सिरिस रसाल
आलवाल नव जोवन द्रुमहु बिशाल।
लैकर बीन वसंतहिं गीत वसंत
कोइ परबीन लीन ह्वै बाग लसंत।
कुंज चमेली बेली फैली जाय
श्यामालता नवेली फूली धाय।

एला बेला लपटी बकुल तमाल
मनु पिय सों आलिंगन करती बाल।
अमराई में कोकिल कुहकै दूर
धीर नीर के तीरहिं जीवन मूर।

थार ना लगाई सखी लाई सो मिलाई कुंज
जेठ सुदी सातैं परदोष की घरी घरी,
घेरि घेरि छहरि छिये व्योम आनदघटा
छाई छिन प्यासी छिति सरस भरी भरी
थाह ना हरष को प्रवाह जगमोहन जू
गंगा औ कलिंदी कूल तीरथ तरी तरी.
हरी हरी दूब खूब खुलत कछारन पै
डारन पै कोइल रसालन छुहू करी

अली शुभ तीरथ तीर लसै मलमास पवित्र नदी युग संग,
अनग के घाट नहाय नसैं भलै पातक केंचुरी मानो भुजंग,
मनोरथ पूरन पुन्य उदै अपनावैं रमा गहि हाथ उमग,
गिरीश के सीस पयोज चढ़ै जगमोहन पावन तौ सब अंग

सातैं जेठ अधिक सुदी बुधवासर परदोष
सुरसरि औ कालिंदिका कूल फूलमय कोष
कूल फूलमय कोष पुन्यतीरथ जो आवै
ताहि रमा गहि आपु दया करिकै अपनावै
बड़े भाग जो पाव परब मज्जन करि ह्यातैं
पातक विनसै मिलै सुपद जगमोहन सातैं.

यह कविता उन्होंने बाँचकर मुझे सुनाया और प्रत्यक्षरों का मनोहर अर्थ भी बताया मैं उनकी कौन कौन सी कथा कहूँ यदि एक दिन का समाचार एकत्र करके लिखूँ तो महाभारत से भी बड़ा ग्रंथ बन जाय

पर वे सदा वियोग के शंकी थे . नाना प्रकार के भाव और दाव जी में करते रहे—मुझे बड़ी दयापूर्वक एक अमोल वज्र की अँगूठी केवल स्मरणार्थ दे गए थे . पर मेरा वज्र हृदय न पसीजा; एक मन आवै कि लोक लाज छोड़कर अनन्य भाव से श्यामसुंदर को भजै, एक मन आवै कहीं निकल जाऊँ, एक मन आवै कि जोगिन बन बन बन धूनी रमाती रहूँ—पर थोरी बैस में ए बातें असम्भव थीं—हाँ प्रेमजोगिन बन श्यामसुंदर के बन में मदन अनल की धूनी रमाना संभव था—इतने में वज्र गिरा . हायरे दई ! मुझे गर्भ की शंका हुई, वह शंका काल के बीतने से रोज रोज पुष्ट हुई . आज और कल्ह कुछ और था . मैं घबड़ानी, चिहुँकी—जकी सी रह गई . "भइ गति साँप छछूँदर केरी" न किसी से कहने की और न सुनने की बात थी . कहती किस्से, कहती तो केवल श्यामसुंदर से और उनसे कहना ही पड़ा . पर वृंदा और सुलोचना दोनों जान गई थीं . त्रिजटा भी जानती थी, फैलते फैलते बात ऐसी फैली कि वज्रांग विष्णुशर्मा और मकरंद सभी जान गए . मुझे नहीं मालूम कि मेरे माता पिता भी इसे जानते थे . पर पिताजी तो घर में थे ही नहीं . उन दिनों कार्यवशात् पहले ही से पाताल को चले गए थे . उन्हें मंत्र अच्छे अच्छे आते थे इसी से नाग लोक में जाने में कभी शंकित नहीं हुए . और ब्राह्मणों की कहाँ अगति है . आकाश पाताल और मृत्युलोक तीनों में विचरते रहते हैं . मेरे पिता के परम हितैषी और संबंधी पंडित वज्रमणि थे . मेरे पिता पाताल जाने के पूर्व ही अपना कुटुंब उनके और श्यामसुंदर के भरोसे छोड़ गए थे . पर सच्चा हितैषी और कृपालु केवल श्यामसुंदर ही था जिसने कभी वक्र दृष्टि से हम लोगों को नहीं देखा . दयाछत्र की छाया सदा हमारे दीन मस्तकों पर किए रहे, शत्रुओं ने जब जब क्रोधाग्नि से हमारा दीन परिवार-वन जलाना चाहा वे सदा कवच से हो सहायता का शीतल जल बरसाते रहे . संसार में ऐसा कौन पदार्थ था जो उन्होंने मेरे मांगे और बिना मांगे नहीं दिया .

जा रंक फकीर सभी की एक सी गति होगी, जो पहले सरागी नहीं था वह विरागी कैसे होगा . सच तो यही है—

नारि मुई घर संपति नासी
मूँड़ मुड़ाय भए संन्यासी

न्यासी नहीं सत्यानाशी हैं .

जपमाला छापा तिलक सरे न एको काम ।
मन कांचे नांचे वृथा साचे राचे राम" ।।

विषय-भोगतृष्णा—विषय करो, झंडा गाड़ के करो, पर तृप्ति न होगी .

"हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते"—

संसार तुच्छ है, असार है इसमें संदेह नहीं—मैं कहता हूँ—यह मेरा पुत्र और वह मेरी पुत्री है—तो भला यह कहो—तुम कौन हो ? तुम कहाँ से आए—कहाँ रहे—कहाँ हो—और फिर कहाँ चल बसोगे ? कुछ जानते हो कि बिना कान टटोले कौव्वे के पीछे दौड़ चले ? संज्ञा तुम्हारी कहाँ चली गई . ज्ञान तो तुम्हारा अपना कर वह देखो तुम्हें छोड़ भागा जाता है—दौड़ो—दौड़ो पकड़ो जाने न पावै. भला, यह तो हुआ , तुम्हारा बल अपने शरीर पर है या नहीं ? यदि कहो नहीं—तो बस तुम हार गए . फिर तुम्हारा बल और किस पर होगा ? कर्म बंधन हैं—कर्म से मुक्ति नहीं होती—यज्ञ, जप, तप, वेद, पाठ, पूजा, फूल, चदन, चावर, पाषाण मूर्ति, देवालय, तीर्थ—इन सभों से मुक्ति नहीं— "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"—यही सर्वोपरि समझो—किसका ईश्वर और किसका फ़ीश्वर—"ईश्वरासिद्धेः" ईश्वर मुक्त है या बद्ध ? मुक्त है— तो उसे सृष्टि बनाने का प्रयोजन क्या था—नहीं जी कदाचित् बद्ध है— तो बद्ध होने में मूढ़ है—फिर सृष्टि बनाने को सर्वथा असमर्थ है— क्यों क्या कुछ और बोलोगे . आत्मा का ध्यान करो "नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः" "असंगोयं पुरुषः", इत्यादि देखो . शुभाशुभ

कच ने भी इतनी सेवा देवयानी की न की होगी . राम और नल को भी सीता और दमयंती के विषय में इतने दुःख न झेलने पड़े होंगे दुष्यंत भी शकुंतला के लोप हो जाने पर इतने विकल न भए होंगे . लोप ! हाय लोप—यह क्या भविष्यवाणी निकली . लोप और कोप दोनों." इतना कह श्यामा रोने लगी मैं इस विचित्र लीला को देख चकित हो गया मुझसे कुछ कहा नहीं गया मन चिंता के झूले में झूलने और कुछ और वृत्तांत सुनने को फूलने लगा . पर अब सुनना कैसा अब तो प्रत्यक्ष देखना रह गया था एक तो स्वप्न दूसरे स्वप्न में भी प्रत्यक्ष—प्रत्यक्ष पर भी परोक्ष, परोक्ष पर शब्द —और शब्द भी कैसा कि आप्त, सर्वथा विश्वास योग्य रथयात्रा का मेला आया प्राणयात्रा खूब हुई हाँ— तो रथयात्रा की बात–यह जगन्नाथपुरी के मेला का अनुकरण है . श्यामा पुर में सभी रंग तो होते हैं . श्यामा और श्यामसुंदर इसी ब्रज की खोरों में खेलते खाते रहे, पर कच्चे गऊ का माँस कभी नहीं खाया यह तो वही कहानी है कोई विश्वासपात्र और मित्र किसी राजा के पास अपने अंगरखे के भीतर छाती के निकट एक लवा को लपेट लेकर गया और जब युद्ध का समय आया बोला 'महाराज जो इस जीव की होगा सो आपकी होगा" यह कह वह अपने घर आया और उस लवे की ग्रीवा मरोर डारी . बिचारा छोटा सा पक्षी मर गया और उन लोगों ने मिलकर उस राजा का भी वही हाल कर दिया . बस, स्वप्न में भी नीति, स्वप्न में सभी देखा . होनी अनहोनी सभी हस्तामलकी के समान जान पड़ी . यात्रा की सैर हुई जगन्नाथ जी की पावन झाँकी हुई, पर मैं नास्तिक हूँ यदि नहीं भी हूँ तो लोग तो ऐसा ही समझते हैं मैं तो शपथ-पूर्वक इस कोरे कागद पर लिखे देता हूँ कि आज लौं मेरे हृदय को किसी ने नहीं पाया . किसके माँ बाप और किसके पुत्र कलत्र, कोई किसी का नहीं "जग दरसन का मेला है" मिल लो, बोल लो, हँस लो खेल लो . 'चार दिनों की चाँदनी फेर अँधेरा पाख —अंत को सब एक राह से निकलेंगे,

राजा रंक फकीर सभी की एक सी गति होगी. जो पहले सरागी नहीं हुआ वह विरागी कैसे होगा . सच तो यही है—

नारि मुई घर सपति नासी
मूँड मुडाय भए संन्यासी

संन्यासी नहीं सत्यानाशी हैं .

जपमाला छापा तिलक सरे न एको काम ।
मन काचे नाचे वृथा साचे राचे राम" ॥

विषय-भोगतृष्णा—विषय करो, खूब गाढ़ के करो, पर तृप्ति न होगी .

"हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते"—

ससार तुच्छ है, असार है इसमें संदेह नहीं—मैं कहता हूँ—यह मेरा पुत्र और वह मेरी पुत्री है—तो भला यह कहो—तुम कौन हो ? तुम कहाँ से आए—कहाँ रहे—कहाँ हो—और फिर कहाँ चल बसोगे ? कुछ जानते हो कि विना कान टटोले कौवे के पीछे दौड़ चले ? सज्ञा तुम्हारी कहाँ चली गई . ज्ञान तो तुम्हारा अपना कर वह देखो तुम्हें छोड़ भागा जाता है—दौड़ो—दौड़ो पकड़ो जाने न पावै. भला, यह तो हुआ . तुम्हारा बल अपने शरीर पर है या नहीं ? यदि कहो नहीं—तो वस तुम हार गए . फिर तुम्हारा बल और किस पर होगा ? कर्म बंधन हैं—कर्म से मुक्ति नहीं होती—यज्ञ, जप, तप, वेद, पाठ, पूजा, फूल, चंदन, चामर, पाषाण मूर्ति, देवालय, तीर्थ—इन सभों से मुक्ति नहीं—"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"—यही सर्वोपरि समझो—किसका ईश्वर और किसका फीश्वर—"ईश्वरासिद्धेः" ईश्वर मुक्त है या बद्ध ? मुक्त है—तो उसे सृष्टि बनाने का प्रयोजन क्या था—नहीं जो कदाचित् बद्ध है—तो बद्ध होने में मूढ़ है—फिर सृष्टि बनाने को सर्वथा असमर्थ है—क्यों क्या कुछ और बोलोगे . आत्मा का ध्यान करो "नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः" "असंगोयं पुरुषः" इत्यादि देखो . शुभाशुभ

कर्मों से कुछ प्रयोजन नहीं जब पुरुष प्रकृति से विलग होता है तभी मुक्ति है और पुनर्जन्म तभी यह होगा—अब अधिक सुनोगे तो पूरे योगी ही हो जावोगे .

ज्ञान सूझ रहा है, क्यों न हो मेरे मित्र क्यों न हो मैं तुम्हारा दास हूँ—चलो अब कुछ तीर्थ सेवन करें—बहुत हो गया. जाने दो—जाने दो जो चाहै सो करै करने दो, हमैं क्या पड़ी जो दूसरों के बीच में बोलैं . परमार्थ करो . हमको तो सदा गोतम जी का न्याय कठ करना है, फक्किका फाँक के बैठ रहो या चलो रथयात्रा का मेला देखैं, या गंगा जी चलो प्रयागराज चलैं, त्रिवेनी में डुबकी लगावैं, कुंभ का मेला देखो, कुम्भज मुनि का दर्शन कर अपनी आत्मा शुद्ध करैं नहीं नहीं श्यामा न छूटे . श्यामा कहाँ गई—तो अब श्यामा रोने लगी—मैं बड़े घन-चक्कर में पड़ा यह नहीं जानता था कि श्यामसुंदर भी यह कहानी निकट ही लतामंडप में छिपा छिपा सुन रहा था . मैं देखने लगा यह कौन आता है ? श्यामसुंदर ! श्यामसुंदर ही था . दौड़कर श्यामा के अभिमुख हुआ . श्यामा ने कहा "हायरे मनमोहन प्यारे—हाय हाय कहाँ था प्यारे" ऐसा कह श्यामसुदर की ओर दौड़ी कि उसे धाय के कंठ में लगाले त्योंही आँसुओं का सागर उमड़ा जिधर देखो उधर जल ही जल दिखाने लगा . पानी बढ़ने लगा . पानी श्यामसुंदर के कमर तक था, श्यामा उसी शिखर पर खड़ी थी चिल्लानी "चलो चलो तैर आवो .

> प्रेम समुद्र अथाह है पास न खेवनहार ।
> पास न नाव लखात गहि आस शिला लगु पार ॥"

समुद्र में पाला पड़ने लगा उत्तर की हवा बही क्षण में श्यामा की मूर्ति देखते ही देखते बिला गई . उधर श्यामा ने सहारा देने को हाथ फैलाया इधर श्यामसुंदर ने पर भावी प्रबल है . सब श्रम निष्फल हो

गया . बस यही दोहा हाथ रह गया . श्यामसुंदर रोने लगा भूमि पर गिर पड़ा मैने उसे उठाया प्रबोध किया आँखें पोछी और धीरज धराया पर सच्चे नेही कब मानते हैं .

'डरन डरैं नींद न परै हरै न काल विपाक।
छिन छुनदा छाकी रहति छुटत न छिन छविछाक॥'

श्यामसुंदर मुझे अपना प्राचीन मित्र जान कहने लगा . संबंध, बस, जैसे देह और देही का—स्थूल और लिंग शरीर का हम लोगों में भेद नहीं था . इस मित्रता की कथा का स्वप्न नहीं हुआ इसी से इस स्थल पर नहीं लिखी . श्यामसुंदर का अनंत विलाप सुनो सुनने के लिए महाराज पृथु हो जावो ब्रह्मा से प्रार्थना कर उनसे उनका एक दिन भी उधार ले लेवो; वह बोला, "प्रिय पहले तो वह पत्र सुनो जो मेरे प्रियतम प्रेमपात्र ने लिखा था तब आगे कुछ कहूँगा .

प्रियतम—! तुम्हारा पत्र बहुत दिनों पर आया जिसके विलम्ब का कारण तुमने किसी श्यामालता को बतलाया जो आज कल्ह तुम्हारे प्रेमतरु पर नित नव पल्लवित होगी . खैर—तुम्हारे प्रेम समुद्र की नौका तुमको आधार है—तुम्हारे आनंद के पाल उड़ें पर ईश्वर तुमको उन निराशा की चट्टानों और वियोग के तूफानों से बचावै जिनने प्रायः प्रेम के सौदागरों की आशा भंग करके विध्वस्त किया है . तुम्हारे मनोरथ मंदिर की नवीनमूर्ति जिसकी पूजा तुमने प्रेम से की होगी—जिसके चरणों पर सुमन समर्पित किये होंगे—और जिसके वरदानों से [illegible] नहीं होती कृपा करके तुमको फिर फिर कृतार्थ करै !"

तुम्हारा
प्रेम

सुनो इस पत्र के प्रत्येक अक्षरों (अक्षर) का कैसा बल है—वाहरे प्रेमपात्र तेरी बड़ाई क्या करूँ—तू तो मेरा परम सुहृद और आंखों का तारा है. तूने यह कैसी भविष्यवाणी भाषी. मैं तो इस विचित्र आत्मा के संयोग का उदाहरण देख चकित हो गया, आहा! इसी को सिद्धि कहते हैं. जीव एक है. देखो हजार कोस पर बैठा प्रेमपात्र हमारा भविष्य जान गया—जान ही नहीं गया बांच लिख भी दिया. यही सच्चे प्रेम का प्रमाण है. ध्यान भी लगाना इसी का नाम है. समाधि भी इसे कहते हैं. मैं प्रेमपात्र का बड़ा भरोसा रखता हूँ. वे मेरे अद्वितीय मित्र और इस जगतीतल में मेरे मानस के एक ही हंस हैं. जैसे चकोर अद्वितीय भाव से चंद्र को—मयूर मेघ को—कमल रवि को और कोइल रसाल को भजते हैं उसी प्रकार मैं साक्षात् मंगल मूर्त्ति प्रेमपात्र को भजता हूँ—

जिमि मंदर मथि सागरहिं पायो लोकानंद
चंद्र सरिस मंगल मिल्यौ जगमोहन सुखकंद.
जिमि अशेष जग को तिमिर नासत एक मयंक
मंगल मणि शशि हिय तिमिर जगमोहन जिय अंक.
उत फणिमणि वासुकि सिरहिं अहिपुर करहि प्रकास
इत मंगल मणि मोर हिय पुर लहि दिपत अकास.

उनकी मूर्ति मेरे हृदय पर लिखी है—बस—कहाँ तक लिखूँ उनकी हमारी प्रीति निबह गई. ईश्वर सभी की ऐसीही निबाहे. मैं तो निराश हो गया. श्यामा ने क्या कहा—स्वप्न तो नहीं था. प्रत्यक्ष था कि स्वप्न मुझे कुछ भी नहीं मालूम—

सुख ना लखात नहीं दुःख हू जनात हमैं,
जागत कै सोवत बतात तुम सो दई।
बैठ्यौ कै चलत चित्यौर में लिख्यौ कैधों चित्र,
देह सो विदेह कैधौं अगति दई दई।

मातो कै वियोग विषघूँट घूँट्यौ मीत मैंने,
मोह सब इंद्रिन विचारत कहा नई।
जीवत कै मरत विकार भरमात अहो,
श्यामा बस कौन जगमोहन दशा भई—"

इतना कह श्यामसुंदर ने आँसू भर लिये, मैंने कहा—

"यही तेरे आँसू गिरत धरनी जर्जर कना
कहीं बातैं काँढ़ँ विखर मनु मोती मन घना
भयो भारी तेरो विरह जिय घेरो घहरि कै
कहै चेतो मेरो अधर तुअ नासा थहरि कै.

श्यामसुंदर ने कहा—"भाई मैं क्या कहूँ मुझसे कुछ कहा नहीं जाता—

बिरह अगिन तन वेदना छेद होत सुधि आय
जियते नहिं टारी टरै चाह चुरैलिन हाय—

बस अब मेरी कहानी, विनय और विलाप सुनना होय तो विनय* पढ़ो—

कुंडलिया

दुसह विरह की आँच सों कैसे बचिहैं प्रान
बिनु संजोग रस के सिंचे श्यामा दरस सुजान
श्यामा दरस सुजान परस तन पाप नसावन
दरद दरन सुख करन अधर मधुरान सुपावन
श्री मंगल परसाद लजावत शरद इंदु कह
मुखमयंक तुअ बंक अलक अरु भाल बिंदु सह"
श्यामा श्यामा नाम को जीह रटत दिन रैन
श्यामा की मूरति अजों टरत न पलभर नैन

---

* यह विनय अंत में छपी है।

"टरत न पलभर नैन हियो निज धाम बनायो
बहुरि छुड़ायो खान पान प्रानन अपनायो
श्री मगल परसाद तुही जग में सुखधामा
और सकल जजाल तोहि बलि जाऊँ श्यामा।"
पावस गई झलकी शरद सजन आगम कीन्ह
सजन गजन लोचनी श्यामा दरस न दीन्ह
"श्यामा दरस न दीन्ह चन्द वा मुख सम भायो
गए बहुत दिन बीत शरद पूनो चलि आयो
श्रीमगल परसाद जरै जियरा बिरहा बस .
नीर नैन ते झरत झरै झरना जिमि पावस

लावनी

मिलैंगे प्यारी तुमसे कभी यह आस लगाए रहते हैं।
यहाँ वहाँ या और कहीं बस तलफ तलफ दुख सहते हैं॥
किए करार अपार सार कुछ मिला न फल तुमसे प्यारी।
हार मान कर बैठे बस अब भई रैन मुझको भारी॥
कही बहुत कुछ सही पीर हम हाय धीर अब ना आवै।
सिसक सिसक कै आइ आह कर सजल नैन दुख तन तावै॥
कल न परै पल एक कलपते आह आह करते बीते।
रैन द्यौसहू चैन छिना नहिं सकल मोद मन ते रीते॥
मारो वा राखो सुधि प्यारी बार बार यह कहते हैं।
यहाँ वहाँ या और कहीं बस तलफ तलफ दुख सहते हैं॥
बहुत कहा समुझाया तुमको कही न मानो सो तूने।
याद करो वह बात पुरानी, भए भए दुःख ए दूने॥
घाट बाट की सुरति न आवति कहा कहाँ तेरी बतियाँ।
रीझि रीझि कै कठ लगी तब दरक जात सुधि कै छतियाँ॥

रोय रोय हम नदी बहाई आँसुन की तहँ बहते हैं।
यहाँ वहाँ या और कहीं बस तलफ तलफ दुख सहते हैं॥
पैयां परौं गुसैंया जाने जो मैं जो मेरे आती।
कहे से क्या अब लिख लिख भेजो सब कुछ हम तुमको पाती॥
हाय धरो या साथ तरक कर मैं न आह करनेवाला।
है वफोनवत गरदन तेरी कभी न हूँ टरनेवाला॥
प्रान जाय पै प्रन न नसावै कही तेरी हम करते हैं।
यहाँ वहाँ या और कहीं बस तलफ तलफ दुख सहते हैं॥
छोड़यौ तू मझधार हमैं कहु कौन पार करनेवाला।
तेरे सिवा नहिं धीर हमारी पीर कौन हरनेवाला॥
जो तेरे सनमुख मर जाते तो न सोच जी में करते।
एक नजर भर देख भला हम मौतहु से नाहीं डरते॥
श्यामा विनै सुनो जगमोहन हियो प्रान तन दहते हैं।
यहाँ वहाँ या और कहीं बस तलफ तलफ दुख सहते हैं॥

सवैया

दूर बसे बस मागन आँगन तौहू भन्यौ इक आस समीरन।
प्रीति की डोर न टूटै कबौं वह बाढ़ै मनो सुनु द्रोपदी चीरन॥
वैरि ये कैसे कटै दुख द्यौस दुखी जिय होत हमैं कहुँ धीर न।
भोगत प्रान परे केहि पातक सो जगमोहन को हरै पीर न॥

आएँ सुधि धीरज बिलात बिललात हियो
मीन जलहीन लौ तलफ तलफावतो।
कौंधत करेजन कजाकी कमजात काम
कानन कमान तान कानन दिखावतो॥
चदहू चकोरपिय मद गहि बानि हाय,
चोंच ना चकोर सुधा बूंदन चुवावतो।

अपना स्वभाव क्यों नहीं छोडते क्या तुम्हें यश लेना अच्छा नहीं लगता ? क्या सदा कलंक प्रिय ही बनना भाता है—"

श्यामसुंदर कपोल हाथ पर रख कराहने लगा, मूर्छित हो भूमि पर गिर पडा. ज्ञान आंसुओं के साथ बह गया, विज्ञान का प्रदीप जो हृदय में जलता था बुझकर वाष्प हो आह के साथ निकल गया. केवल आह की बतास मात्र भर गई.

> "साँसन ही सो समीर गयो अरु आंसुन ही सब नीर गयो ढरि
> तेज गयो गुन लै अपनो पुनि भूमि गई तनु की तनुता करि।
> देव जिये मिलबे ही की आस सु आसहूपास अकास रह्यो भरि।
> जा दिन तै मुख फेरि हरै हँसि हेरि हियो जु लियो हरिजू हरि।"

"घटी एको न जाकी कही जितनी जेहि नेह निबाह्यौ न एको घटी,
घटी लाज सबै कुल कान भट्ट कहिए अब कासो कहे से लटी
लटी रीति सखी मनमोहन की कवि देव कहैं ब्रज में भ्रमटी
गटी ग्वालिन की लटी बाँधे फिरै बसिए ना भट्ट कपटी की पटी."

अधिक कौन कह सक्ता है, केवल मन में मसूसि मसूसि रह जाना पडता है. मैं सोचने लगा कि देखो श्यामसुंदर नदी के इस पार खडा रहा—हा ईश्वर श्यामा कहाँ लोप हो गई. अंतर भी दोनों के बीच में कुछ ऐसा न था कि जिस्के कारण श्यामसुदर को श्यामा के निकट पहुँचना असंभव होता. पर विधाता की अनीति कही नहीं जाती. मैंने श्यामसुंदर से कहा "भाई धीरज धर धीरज धर—देख यह आशानदी मनोरथ के जल से भरी तृष्णारूपी तरंगो से आकुल है, इस में राग के अनंत ग्राह कल्लोल करते हैं, इसके किनारे वितर्क के विहंगम उड रहे हैं और यह स्वयं धर्म के द्रुम को ध्वंस करती है. इसमें मोह की दुस्तर भौंरी पड़ती है और यह चिंता की अति गहन और ऊँची तटी के बीच से बह रही है. इसके पार जाना काम रखता है—" इसको सुन

श्यामसुंदर उठ खड़ा हुआ आगे देखा तो वही नदी बहती दिखी जिसने मनमोहिनी प्रानधन श्यामा को तरग हाथों के बीच छिपा लिया था और इससे वियोग कराया था . उस नदी के बीच में वही शिखर मात्र दिखाता था जिसपर श्यामा का सिंहासन धरा था . श्यामसुदर मुझसे बिना पूछे और उत्तर दिए कूद पड़ा, सैकड़ों गोते खाए . मेरा करेजा उछलने लगा

मैं उसे थाम्हकर रह गया . एक तो श्यामा गई दूसरे श्यामसुदर भी उसी के पीछे चला—मैंने सोचा कि जीना मेरा भी व्यर्थ है—यही जान विमान को छोड़ कूदा—आँखें बद हो गई' कानों में पानी समा गया अब तो नदी में मग्न हो गए—क्या जाने कहाँ गए—कुछ सुधि न रही—विवश थे—सुधि बुधि भूल गई—पाताल गए कि आकाश—बस, आँख मूँद के रह गए .

श्यामसुदर की दूर से धुनि सुन पड़ी और वह यही कहता गया—

प्यारी जीवन मूरि हमारी । दीन मोहि तजि कहाँ सिधारी ॥
तुम्ह बिनु लगत जगत मुहि फीको । गेह देह सर्वस नहिं नीको ॥
कह तो वह गुलाब सो आनन । तेरे बिना गेह भो कानन ॥
हाय हाय लोचन की तारा । हा मम जीवन जीवनधारा ॥
हाय हाय रति रंग नसेनी । हा मृगनैनी नागिनिवेनी ॥
हा मम जीवन प्रान अधारा । हा मम हृदय कमल मधुवारा ॥
हा मम मानस मान सरोवर । पकज विहँग शरीर तरोवर ॥
हा मम दृग चकोर शशि चांदनि । हा विधुवदनि सुकोइल नादनि ॥

दोहा

हा मम लोचन चद्रिका, हा मम नैन चकोर ।
हा मम जीवन प्रानधन, कहा गई मुख मोर ॥

बाँह गहे की लाज तो, करियो तनिक बिचारि ।
तिन सी तोरी प्रीति क्यौं, काहे दियो बिसारि ॥

"तलफत प्रान तुम सामरे सुजान बिना
कानन को बंसी फेर आयके सुनाय जाहु,
चाहत चलन जीव तासों हौं कहत पीय
दया करि कैहूँ फेरि मुख दिखराय जाहु;
रहि नहि जाय हाय हिय हरिचंद हौंस
विनवत तासों मन और नेकु आय जाहु,
कसक मिटाय निज नेहहिं निभाय हा हा
एक बेर प्यारे आय कंठ लपिटाय जाहु.

इति तीसरे जाम का स्वप्न.

अथ चौथे याम को स्वप्न

"थाकी गति अंगन की मति पर गई मंद
सूख झाँझरी सी है कै देह लागी पियरान,
बावरी सी बुद्धि भई हँसी काहू छीन लई
सुख के समाज जित तित लागे दूर जान;
हरीचंद रावरे विरह जग दुखमयो
भयो कछू और होनहार लागे दिखरान,
नैन कुम्हिलान लागे बैनहु अथान लागे
आओ प्राननाथ अब प्रान लागे मुरझान."

चौथा पहर रात्रि का लगा; यह धर्म का पहरा था. स्वप्न की डोर अभी तक नहीं टूटी तौ भी क्या का क्या हो गया. अब भोर होने लगा. तमचोर बोल उठा, मोर भी रोर करने लगा. मद मंद वायु चलता था मैं तो घोर निद्रा में मग्न था. भैरवी रागिनी सज के आ गई. गैवैयों की छेड़ छाड़ मची. धर्म की बेल फिर भी लहलहानी. चकई की कहानी पूरी भई. प्यारे चकवा से पंख फटकार और परों को चोंच से निरुवार चली मिलने. संयोगियों को काल सी प्राची दिशा दिखानी (दिखने) लगी.

या चकई को भयो चित चीतो चीतोति चहू दिसि चाव सों नाची,
है गई छीन कलाधर की कला जामिनि जोति मनों जम जाँची,
बोलत बैरी बिहंगम देव संजोगिन की भई संपति काची,
लोहू पियो जो वियोगिन को सो कियो मुख लाल पिशाचिन प्राची,

खंडिता भी अपने अपने चिर बिछुरे प्रियतमों से मिल प्रसन्न हुई,

लगीं लाल लाल आँखें दिखा दिखा झिड़कने और छिपे प्रेम से उरहने देने और बात कहने .

यथा सवैया,

द्वारिका छाप लगी भुजमूल कहौ फल बेद पुरानन तौन है,
कागद ऊपर छाप सुनी जिहि को सिगरे जग जाहिर गौन है;
आप लगाई जो कुंकुम की सो सुहाई लगै छबि सों उर भौन है
छाती की छाप कौ प्यारे पिया कहियै अलि याको महातम कौन है.

कोई उत्कंठित होकर यह कहने लगी .

"छपाकर जोति मलीन महा द्युति छीन त्यों तारन की दरसात,
न आए गुपाल कहाँ धौ रहे यह कासो कहौं हियरा हहरात;
कहै ललिते तिमि लाज औ काम परी दुऔ बीच बनै न बतात
कछू तिय बैन जुबान पै आय भलैं नट कैसे बटा फिर जात."

और कोई तो .

"देखि ढुरी पिय की पगिया अलसानि भरीं अखियाँ जन जोई,
त्यों ललिते पग के डग डोलत बोलत औरई भाँति बनोई
कैसी बनी छबि आज की या मन भाई करो बरजै नहिं कोई
खोइए सोय सबै श्रम यों कहि रूसि कै बाल मसूसि कै रोई."

जैसे सुर लोगों ने सागर को मथि चंद्रमा रत्न निकाला था वैसे ही मोर ही अहीर लोग दधि को मथानी से मथि नवनीत के गोले को निकालने लगे .

रात भर दंपतियों का नव निधुवन प्रसंग देखते देखते अनिमिष नैनों से जब दीपक थक गया तब अपने नैनों की जोत मिला मिलाने लगा .

चिरैयाँ अपने बसेरे से उठ लगी च्यों च्यों करने स्वप्नावस्था में हि (हरे) श्यामा का पता न लगा . श्यामसुंदर यही कवित्त कहता कहता यहाँ

चला जाता था विचारे को थाह न लगी . न जाने कब तक और कहाँ तक बहैगा . मैं भी तो विमान सिमान सब छोड़ उसी के (की) खोज में तत्पर था . उसके राग की तान नदी की तरंगों पर लहरा कर वायु से टक्कर खाती और उसकी प्रत्येक आह की आह ब्रह्मांड में समा कर समस्त लोक में व्यास हो स्वयं ब्रह्मा के सिंहासन को भी हिला देती थी . ऐसे अवसर पर श्यामा न जाने किस पर्वत के (की) कंदराओं में जा बची थी कुछ ज्ञात नहीं . उसको श्यामसुंदर का हाल कहनेवाला कोई न था , ऊधो का पता न था सेवक लोग सब सेवकाई में लगे थे, और किस की गणना थी . भावी प्रबल होती है पर मैंने पीछा न छोडा . श्यामा का (की) खोज लगाने के लिए आगे बढ़ा . जल के अनेक प्रकार के जंतुओं के फंदे में गिरता पड़ता चला . थाह न लगी एक भी नौका न थी—तीर लगना कठिन था . अभी तो अनेक भ्रम, आवर्त्त, नाद, ह्रद, शिला और चट्टानों से ठोकर खानी थी . तीर तो देख भी नहीं पडता था . पार करना केवल ईश्वर के हाथ रह गया . मुझे सिवाय बहने के और कुछ नहीं, सूझता था—बस फिर क्या पूछिए बह चला . बह गया बह गया . पता नहीं—ठीक नहीं, तरंगों ने अपने हाथों में उपगूहन कर लिया . मैं तो चाहता था कि या तो पार लगै या बही जाऊँ . एक बार जोर मारा—दस बीस हाथ बह कर उस शिखर की ओर मुड़ा फिर बीस हाथ तैरा—तीस हाथ गया—चालीस हाथ जाकर पचास हाथ पर शिखर हाथ लगा . सांस लेने का स्थान तो मिला . शिखर पर चढ़ते ही छींक हुई पर इसकी क्या चिंता सन्मुख की छींक सदा लाभदायक होती हैं. इस शिखर पर अशोक के वृक्ष तरे सिंहासन मात्र था . मैंने इसे भली भाँति देखा भाला, यहाँ वही श्यामा का सिंहासन था पर दैवयोग से श्यामा न थी . अभी तक न तो श्यामा और न श्यामसुंदर का पता था . नदी के बीचो बीच का शिखर—पहले थल था पर अब जल हो जाने के हेतु कोई जंतु भी नहीं है . भयंकर भ्रम सांय सांय

बोलता था . केवल झिल्ली की झनकार सुना (सुनाई) पड़ती थी. मैं इसी अशोक के नीचे बैठ गया और सोचने लगा कि हाय रे ईश्वर! तू मुझ हतभागे को किस विजन वन में लाया . अब क्या करूँगा—कहाँ जाऊँगा . भगवान ! तू भी बड़ा विचित्र है, मेरी दशा इस समय तो ऐसी हो गई थी "जैसे काक जहाज को सूझत और न ठौर" यह सब मुझे अपने मित्र श्यामसुंदर के काज सहना पड़ा—पर श्यामसुंदर अद्यापि कहीं दिखाई नहीं दिया . मैं इधर उधर बहुत दूर तक दृष्टि फेंक देखने लगा पर कुछ भी पता न लगा . मैं अब मौन होकर आसन जमा के बैठ गया . अशोक से शोक मिटाने की प्रार्थना की, यह जड़ कब बोलने का था ? "जब तक स्वासा तब तक आसा"—यह कहावत प्रसिद्ध है. प्राणयात्रा की कुछ आशा न थी—प्राण बचना दुर्लभ जान पड़ा . थका मांदा अपने करम को ठोंक बैठा .

रात ही को मुझे भगवान् दिवाकर ने दर्शन दिये . यह भी आश्चर्य की बात है—सूर्योदय से मुझे कुछ भी हर्ष न हुआ—क्योंकि फिर तो संध्या की चिंता आई—जब संध्या होगी तब रात्रि तो अवश्य ही होगी . यह बड़ी गाढ़ी चिंता उपस्थित हुई क्योंकि इस निर्जन शिखर पर ही बिना अन्न पानी रात बितानी पड़ैगी . आश्चर्य नहीं कोई वन का हिंसक जन्तु आ टूटे—तो बस क्या समाप्त हो जाय , दिया बुझ जाय. जो होना था सो तो होईगा अब बहुत सोच विचार से क्या हाथ आता है—चलो—"जब ओखली में सिर दिया तो मूसरों की क्या गिनती रही"—यही निदान सोच शिव सी अखंड समाधि लगाय आसन मार बैठ रहे . ज्यौंही समाधि लगाई अनेक कौतुक देख पड़े . शरत्काल प्रगट हुआ , आकाश निर्मल शंख सा दिखाने लगा. सारस हंस चकोर सब के सब पूनो की शोभा निरखने लगे . जल विमल हो गया . नदियाँ स्वच्छ धारा से बहने लगीं , चंद्र का प्रतिबिंब जल के अंतर्गत छवि करने लगा . दुष्ट काले मेघ चद्रमा के प्रकाश को देख

विला गए--ईश्वर वैरियो का इसी भांति पराभव करै. हसों का शोर सुनते ही मोर भागे और अपने पक्ष गिराने लगे क्योंकि अब उनका पक्षकार कोई भी न रहा.

फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषाकृत प्रकट बुढाई॥
उदित अगस्त पथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखै संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥
रस रस सूखि सरित सर पानी। ममता त्यागि करहिं जिमि ज्ञानी॥
जानि शरद रितु खंजन आए। पाय समय जिमि सुकृत सुहाए॥
पंक न रेणु सोह अस धरनी। नीति निपुण नृप कै जस करनी॥
जल सकोच विकल भए मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धन हीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ वृष्टि शारदी थोरी। कोई इक पाव भक्ति जिमि मोरी॥
चले हरपि तजि नगर नृप तापस वनिक भिखारि।
जिमि हरि भक्ति पाइ जन तजहिं आश्रमी चारि॥
सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। जिमि हरि शरण न एको बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसे। निरगुन ब्रह्म सगुन भए जैसे॥
गुंजत मधुकर निकर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपत्ति देखी॥
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही॥
शरदातप निशि शशि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई॥
देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहि जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किए कुलनासा॥"

ऐसी शरत् ऋतु आई इसकी शोभा निहार रहा था कि शिखर पर और भी कौतुक देख पड़े. क्या देखता हूँ कि एक बड़ी भारी विचित्र सभा लगी है. ऐसी सभा मैंने कभी नहीं देखी थी. भगवान् रामचंद्र, सीता और लक्ष्मण के सहित एक चंद्रकांत के सिंहासन पर जो

शिखर के ऊपर धरा था विराजमान हैं. उनके सामने हनुमान जी हाथ जोड़े खड़े हैं, गरुड़ भी सेवा में तत्पर अड़े हैं.

बाईं ओर एक बजबली भोग लगाने वाला पाखंड ब्राह्मण खड़ा है. महावीर की पूछ पकड़े एक बड़ी सुफेद डाढ़ी वाले वृद्ध महामुनि थे इनके पीछे हाथ जोड़े बड़े गुरियों की माला लिए दोगा पहरे लाल बनात का कनटोप दिए—त्रिपुण्ड्र के ऊपर रामफटाका फटकाए उपलहे पावन—एक आँख से हँसता और दूसरी से रोता—लंबा साठिया—बूढ़ा—गाढ़ा और मुनिजी के सुख में सुखी और उनके दुख में दुखी बना उन्हीं के पीछे खड़ा था. इसके ललार की खाल सिकुड़ गई थी, दाँत और ओंठ दोनों बदरंग पड़ गए थे. आश्चर्य नहीं कि ताम्बूल और चूर्ण दोनो अपना काम दसनों पर आरंभ कर चुके थे. मुख विवर ऐसा जनाता था मानों किसी पर्वत की गुफा हो. दाँत की पांति ऐसी थी मानो कंदरा के मुख पर चट्टानें लगी हों—बुढ़ापा झलक आया था और आधे से अधिक यौवन का कुठार बन चुका था. इसके बगल में एक भैरववाहन पाहन से भी दुष्ट लुलखरी करता बैठा था. भैरववाहन का रंग गोहुआँ माथे पर रामानंदी तिलक—बाहु और हृदय पर राम-नाम छापे—पूछ हिलाते, उदर और दाँत दिखाते—कभी कभी भोंकता हुआ देख पड़ा, आगे के दाँतों में गीता की पोथी दबाए पर भीतर हड्डी चबाते बैठा था. इसके दहिनी ओर इसका प्राणोपम मित्र और अनुचर साक्षात् वाराह भगवान् अपने दंष्ट्रकराल पर ऋग्वेद की पुस्तक धरे मानों अभी महासागर से उसे उद्धार कर लाए हो बैठा था. इसके गलमुच्छे और कान तक लंबे बाल शोभा देते थे. माथे पर रोरी या चंदन की रेख इसके मत को पुष्ट करती चमकती थी. इसी के पार्श्व में महाशय शीतलावाहन भी डटे थे. ए वाराह भगवान् के भाई थे इनको शीतला अष्टक गप्पाष्टक से भी बढ़ के कंठ था और यद्यपि ए अपने खर शब्दों के हेतु कल कंठ न थे तथापि भगवती दुर्गा की लपेट सपेट के द्द

तीन घंटों में सायंकाल को दुर्गा पाठ करके संतुष्ट ही कर लेते थे. इन दोनों के मध्य में एक जंबुक अपने पैरों से भूमि खोदता—इधर उधर देखता—सभों के कानों में फुसफुसाता—धान की रोटी दांतों में दबाए रामायन बाचते बैठा था, इसके पीठ पर एक महाधर्मी निष्कपट बक 'प्राणिनाम्यधशंकया'—एक चरण उठाए भटकता था. यह वही जंबुक था जिसने कर्पूरतिलक को राज का लालच दे बड़े भारी पंक में फँसाकर उसी का मांस नोच नोच खा लिया पर दुनिया वेष को पूजती है. अंत में सभी अपने किए को पाते हैं. एक ओर सुषेण वैद्य—चित्रगुप्त—काकभसुंडि—धृतराष्ट्र—शिवशंकर—बिलाई माता—ताल्फोड़—खिलात के खाँ—तुंबुरगंधर्व—और स्वयंप्रभा बैठी थी.

मेरी आँख झट इस मनोहर और विचित्र झाँकी की ओर फिर गई. मैं खड़ा हो गया. बड़ी देर तक विचारता रहा. मन में आया कि निकट बढ़ के देखें, आगे पाँव बढ़ाया, बस चल दिया. भगवान रामचंद्र के सन्मुख हाथ जोड़ खड़ा हो गया और मन ही मन नमस्कार और दंडप्रणाम कर बंदना की. चाहा कि कुछ कहें पर इससे भी एक विचित्र दृश्य ने मेरा मन अपनी ओर आकर्षण (आकर्षित) कर लिया. क्षणभर में आँख उठाते ही इसी सभा को एक विस्तृत मंदिर में बैठे देखा यह मंदिर माया के बल से विश्वकर्मा ने बात की बात में बना दिया था. वही सभा बाहर लगी देखी—अर्थात् मंदिर के जगमोहन में. कान बंद करके सुना तो ढोल और सहनाई के शब्द सुने. आँख बंद करते ही यही विकराल वदना चंडी पूर्वोक्त साज से मंदिर के भीतर से निकल पड़ी. मैं एक बार चिहुंक पड़ा, पर इसे भली भाँति चीन्हता था. (इसका वर्णन प्रथम जाम के स्वप्न में हो चुका है). मैंने प्रणाम किया; चंडी हँसी. उसके दुर्दर्श उज्ज्वल दशनों से मंदिर का अंधकार फट गया. यह उसी रूप में निकली जिस रूप में मैंने इसे पहले देखा था—अर्थात् दो बालिकाओं को काँख में दबाए—इत्यादिक रूप में फिर भी दर्शन दिये. सिंह पर

सवार हाथ में मंचभाजन और नरकपाल लिए पहुँची. मैं इन्हें देख प्रार्थना करने लगा. मैं तो श्यामसुदर के (की) खोज में चला था और वह विचा। श्यामा के (की) . मैंने सोचा इससे कुछ अपना काम निकलैगा—क्योंकि पहले इसी ने हमें मंत्र बताया और झोली दी थी . मुझे गन अगन का कुछ ज्ञान न रहा . जी जलता था, मित्र का दुःख असह्य था . चित्त की उमग में कह डारा अब चाहे फलो या मत फलो . मित्र की सहायता क्यों न करता ? जब जिसकी बाँह पकडी तब फिर उसके निमित्त क्या न करना—देखो रामचंद्र ने सुग्रीव के हेतु बाली को मार ही डाला .

दोहा

नासु देवि तिनको करो जे बैरीगन मोर ।
जे न देहि सुख देह कहँ जरैं जौन लखि ओर ॥१

छप्पै

नासु देवि लै कर कराल करवाल करालो
नासु देवि तिन बुद्धि रहै नहिं तन सुधि शालो ।
नासु देवि तू तुरत सकत को तुरत सु दोडो
नासु देवि काली कपाल गहि माल अनौठो ।
मम अरि जे जे दुष्ट खल मिलन हेतु बाधा करहिं ।
तिन कहं अबहीं चंडिके चाडु चाडु चट पट मरहिं ॥२
नासु देवि तेहि तुरत सदा जो मम अरि साँचो
नासु देवि तेहि तुरत आसु बाढो वर जाचों ।
नासु देवि हैं चण्डि चडिके चट पट बाढी
चाडु चाडु जौं साधु जगत परमार तवाढी ।
किलकि किलकि ता कंठ लगि पी सोनित सोनित मदनि ।
हरषि हरषि के पान कर पै रच्छहु जीवन सदनि ॥३

नासु देवि वरदानि ! तुही मम दुःख घनेरे
नासु देवि तू आसु अहै बाधक सुख मेरे ।
नासु देवि इन हनहु हनहु आतुर तेहि आजू
नासु देवि तेहि तोहि साचु जग भगतन काजू ।
करि नासु तासु जेहि रहि न कछु खटका अटका सगमन ।
जननिरूप पै करु दया वापै जो मम प्रानघन ॥४
टोरु तासु भुज प्रथम मथन करि हियरो आतुर
टोरु तासु दुअ जघ जानुनी करि विषमज्वर ।
टोरु जीह गहि तालु दत सब गिरवहु रानी
भजि कमर करि अर्ध ताहि लै जाहु भवानी ।
किलकि किलकि न्यौतो करहु जोगिन अरु बेताल को ।
हिलकि हिलकि लोहू पियहु भरि खप्पर करि भाल को ॥५
मुड जासु तुअ माल कपालहि को सुमेरु जनु
अतराल लसि भाल सुरँग रँग सेल्ही है मनु ।
अस्थि जानु की करहु मनौ तुम्ही झुरही सी
सिंहनाद करि ह्वै सवार सिंहहि सुरही सी ।
जिय लै तासु नचावहू रुड मुड गज बाधिकै ।
वरदायिनि वर देहु यह देहुँ कलेवा साधिकै ॥६
नभ प्रचड उद्दड खड कर फेकहु बलि दै
दिकपालन कह मास ग्रास करि ताकह मलि दै ।
नासु देवि क्यौं करत विलम अवलब जु तेरो
जगत नमो कह और सहायक नायक मेरो ।
बिनवहु तुहि कर जोर कै बैरी कहँ नासहु भलैं ।
पर कर किरपा रच्छिये नैनपुतरी कह भलैं ॥७
यह अष्टक तुअ विरचि वदना करि कर जोरी
बारबार विखार यहै वर माँगहुँ थोरी ।

जासो याको नास तुरत वरदायिनि चंडी
होवै विना विलंब आजु सुर कर परचंडी।
धरहुँ ध्यान तुअ सांब जिय तू हिय की जानत भलै।
पुरवहु मम मनकामना सफल आजु अरि कहँ दलै ॥८
दीन जोर कर विनय करत काली कपालिनी
शूल फाँस गहि प्रान तासु लेवहु करालिनी।
नरमाला द्विपचर्म भैरवी भैरवनादिनि
भीषन जिह्वा ललन दलन रिपु तु जू अनादिनि।
मिटवहु जियकी कसकि तेहि मसकि कंठ लोहू पियत।
निसि अँधियारी में हरहु तासु प्रान शत्रु न जियत ॥९

सोरठा

ध्यान तोर निसि द्यौस चरन जलज सेवत सदा।
जिमि वासो मिलि होस बीतै रैन सुचैन सौं ॥१०
याहि याचि रिपुनास होइ जाहि सुमिरौं जियहिं
पुरवहु सब मम आस दुर्गा दुर्गति नाशिनी ॥११
द्वादश वध सुछंद अधिक जेठ सुदि नैन तिथि।
वासर रोहिनि मंद विरचि विनय बल वाँचिए ॥१२

भगवती कपालिनी प्रसन्न हुई, बोली—"मैं तुम्हारी वंदना से प्रसन्न भई, वर मांग—"

मैंने कहा—"यदि तू सचमुच प्रसन्न है तो मेरी 'वंदना की विनय पूरी कर—श्यामसुंदर का पता बता दे और अंत में श्यामसुंदर को श्यामा से मिला दे बस यह मांगता हूँ. देर में भी उन्हीं को खोजता खोजता इस विजन वन में आया हूँ." इसको सुन चंडी ने अपनी झोली से जादू की काली छड़ी निकाली, निकालकर अपने सिर के चारों ओर घुमाया—फिर सामने लाकर फूँक दिया. फूँक कर ज्योंही उसने

भगवान चिंतामणि के (की) ओर वह छड़ी दिखाई राम, लक्ष्मण और सीता सब शिलामयी मूर्ति मात्र हो गए—दूसरे (दूसरी) बार जो उसने फूँक कर वही छड़ी दहिनी और बाईं ओर घुमाई तो सभा की सभा सब पाषाण की हो गई . जितने पशु पक्षी जीवधारी थे सबके सब केवल पाषाण के आकार मात्र रह गए . चंडिका कहने लगी "तुमने अभी इसका संपूर्ण ब्यौरा नहीं सुना और न देखा—क्यों व्यर्थ भ्रम में पड़े हो—"

मैंने कहा—"देवि ! यदि कुछ न कहती तो अज्ञान ही रहना भला होता पर अब इतने कहने पर अधिक शंका हो गई तो दया करके कही डारो और मेरे मनोरथ पूरे करो"

चंडी बोली—'वत्स ! देखो मैं तुमको अपना प्रभाव दिखाती हूँ . देखो," इतना कह उस वृद्धा ने कुछ पढ़कर पूरब ओर उरदा फेंके . फेंकते ही मंदिर का द्वार बंद हो गया . सभा मात्र पाषाण की जगमोहन में बैठी रही, ठाकुर की झाँकी लोप हो गई—पर उसी द्वार के पास ही एक सुरूपवान् पुरुष—गौरांग-लाल किनारे की धोती पहने-दुपालिया अद्धी की टोपी लगाए—सुकेशधारी—अलफी पहने लँगड़ाता हुआ चिल्लाने लगा मुझे आश्चर्य लगा कि यह क्या हुआ . सुषेण वैद्य जो जादू से प्रस्तर हो गया था उसकी चिल्लाहट सुन उछल पड़ा, ऐसी फलांग मारी जैसे ऊँट. कूद ही तो पड़ा हात में एक छुरा लिए—"जाने न पावे—जाने न पावे" यह कहता कहता उस उक्त पुरुष की जांघ ही काटने को उद्यत हुआ . उधर से बज्रांग और चित्रगुप्त भी पहुँचे—उसी सुरूपवान् को सबल जकड़ लिया और वैद्य जी ने छुरा जाँघ पर रेतना आरम्भ किया, वह कितना चिल्लाया तड़का और फड़फड़ाया पर सुषेण जी कब मानते हैं अब तो यह पुरुष संज्ञ होकर निःसंज्ञ वहीं पड़ गया . चंडिका ने अपने हाथ बढ़ाए और वज्रांग, सुषेण, चित्रगुप्त और उस दुखी

पुरुष को अपने पेट में धर लिया, मैं दाँत तरे उँगली दबा के रह गया—स्तब्ध हो गया—यह तो साक्षात् नरबलि था . मैंने पहले कभी नहीं देखा था, भोजनानंतर ज्यौंही चंडी ने ऊपर दृष्टि की एक अंडा मंदिर के छत से गिरा, गिरते ही फूट गया . उस अंडे में से दो गौर बदन वाले पुरुष जिनके नाम फणीश और लुप्तलोचन थे त्यूरी चढ़ाए पहुँच गए—इन दोनों का आकार बदर सा था, पर पूछहीन रहने के हेतु मनुष्य जान पड़े वे दोनों अपना अपना नाम लेते आए . किस देश के थे कौन कह सक्ता था . पर इन दोनों ने श्यामसुंदर को जकड कर बाँधा था, बिचारा हिल चल नहीं सकता था मैं सजीव हुआ, आसरा हुआ कि मित्र के दर्शन तो हुए अब न जाने दूँगा. पर मुझे क्या ज्ञान था कि वह विचारा किस यमयातना में पड़ा है, तौ भी साहस कर—"भाई—भाई"—कह कर दौड़ा कि कंठ से तो एक बार मिल लो, पर ज्यौंही निकट गया उन दोनों विकट पुरुषों ने रोष (रुष्ट हो ऐसी हुँकारी मारी कि मैं रुक गया, ज्यौंही मेरे नेत्र मुँदे वे लोग लोप हो गए—श्यामसुंदर को एक बार और खो दिया—बस—कर्मगति बड़ी कुटिल होती है—और तिसपर मेरी, मेरी तो सदा की खोटी थी—मैं श्यामसुंदर की दुर्दशा सोचने लगा . चंडी भवानी ने बड़ी दया करके कहा—'इतने ही में तेरी मति चकरा गई—अभी तो और देख क्या देखता है—ले—आज तू दिन भरे का भूखा होगा—दूसरे विरहकातर—ले थोड़ी सी सुरा पी ले—बल होगा, इंद्रियों को सहारा मिलैगा और मेरे कौतुक देखने में सामर्थ्य होगी . तू वैष्णव है तो मैं भी तो वैष्णवी हूँ—मेरा रूप देख'.

"तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥"

मैंने कहा—"देवि तेरी अनंत माया है—तेरा रूप कौन देख सकता है—मैं तेरा आज्ञाकारी हूँ—जो कृपा कर देगी अवश्य ग्रहण करूँगा,"

इतना सुन देवी ने अपना सोने का कंकन मेरे सामने फेंक दिया. ज्यौंही उस कंकन को उठाया वह सुंदर मनोहर चपक हो गया. इस माया को भी देख मैं चकित हुआ. देवी ने कहा' 'बाएँ हाथ में चपक को धर दक्षिण हाथ से उसे ढाको." मैंने वैसा ही किया और वह सुंदर सुगंधित चंपक पुष्प के रंग सी मद्य कल्पवृक्ष की निकली उस चपक में भर गई—"मधुवाता ऋतायते"—यही मंत्र देवी पढ़ती रही—मैं श्यामसुंदर और उसकी प्रानप्यारी श्यामा को अर्पण कर चढ़ा गया. पीते के साथ ही मुझे अपूर्व हर्ष हुआ. मन और बदन प्रफुल्लित हो गए. नेत्र चमकने लगे. स्वाद उसका खटमधुर था. हृदयाब्जकोष को आसव से स्नान कराया. शरीर कुछ और ही गया—गई बुद्धि फिर हाथ आ गई—वेद वेदांग सब आँखों के सामने नाचने लगे. श्यामापुर की शोभा दिखाने लगी—श्यामा की खोरों में अब केवल श्यामा के नाम की झाँई सुनाने लगी. एक बेर दृष्टि उठा कर देखा तो श्यामापुर में आग लग गई—पहले तो फाबुल में लगी. उसके अनंतर ब्राह्मणों के घर जले. मेरा घर तो पहले ही जल चुका था—अपने वंश में आँख उगरिया मैं ही बचा था. पुरुष लोग सब भस्मसात् हो गए थे. बंदर कूदने लगे—सब के सब मुछंदर लाल मुखी थे. बंदरियों को संग में लिए बगल में दबाए इस घर से उस घर कूदते फाँदते फिरते थे. एक तो लोगों के घर आप ही आग लगी थी, दूसरे ये सभों की चूल्हा चक्की ले चले. सब हाय हाय करते रह गए. कौन सुनता है—बंदर की जात कब मानती है. शाखामृग तो ठहरे—पेट भरने से काम—चाहे कोई बसै चाहे उजरै—ए बंदर सब कृष्णचंद्र के भक्त थे—इसी से तो मथुरा में अभी तक असंख्य बंदर घूमते रहते हैं—अपने ईश्वर की पुरी को नहीं छोड़ते—इन सभों में बड़ी चतुर सुग्रीव की स्त्री रुमा भी दिखानी—वह आग लगने पर प्रसन्न सी जान पड़ी क्योंकि उसने अपनी सेना को इस दैवी उपद्रव के ऊपर उपद्रव करने से नहीं रोका. फर्गास

और लुप्तलोचन सेनापति थे—वालि के मरने पर सुग्रीव ने पुराने सेनापतियों को निकाल इन्हीं श्रेष्ठों को उस उच्च पद का अधिकारी किया था—सुग्रीव को कार्य्यभार से नेत्रों से कम सूझने लगा—विभीषण के पास जलवायु सेवन के लिए लंका चले गये थे—हाँ, आग लगी-तो लगने दो—बुझाओ-लोग बुझाने लगे—आग न बुझी—नारदजी अपना (अपनी) बीना ही बजाते रहे—उधर मकरंद गोमती चक्र पूजते पूजते लील गया. वशिष्ठ शांतिकारक वैदिक मंत्र पढ़ते रहे—अग्नि देवता न प्रसन्न हुई-तो कोई क्या करै—पुरवासी विकल इधर उधर पानी पानी पुकारते दिखाई पड़ते हैं—भैरववाहन पर कपटनाग के शिष्य बैठे और शीतलावाहन पर स्वयं शीतला जी सवार होकर ग्राम की रक्षा करने लगीं—नाकों नाकों पर पहरे बैठ गए—किसकी सामर्थ जो निकलै . मनुष्यों का ठट्ठ इकट्ठा हो गया, अग्नि की ज्वाला प्रज्वलित हुई—बद के आकाश की राह ली · लड़केवाले चिल्लाने लगे—

तात मात हा करिय पुकारा। एहि अवसर को हमहिं उबारा॥
खोजत पंथ मिलै नहीं धूरी। भए भस्म सब रहिन अधूरी॥

वशिष्ठ के घर से वह देखो एक छछुंदर निकल पड़ी . पर बोध न हुआ कि किधर गई—सब पहरे चौकी लगे ही रहे—यह छछुंदर बड़ी पुंश्चली थी—चक्रधर का चक्र फिरा धर्म का पहरा आया . रमा ने जीवन दान किये—वज्रमणि का आत्मज सुरलोक को सिधारा . अब फाल्गुन ऋषि का बुलौवा हुआ है, वे भी परमधाम सिधारें, आज्ञा कैसे टारते . म्याद थोड़ी है . शाक्य मुनि को गद्दी होगी—बौधमत फैलेगा . पुरवाई चली . फणीस की बहिन लटोरे डोरिया ने ब्याही, लुप्तलोचन की स्त्री ने द्वितीय विवाह किया . पर देखते हैं तो आगी नहीं बुझी—मैंने सोचा कि अब बिना मेरे (मेरी) दया के कुछ शांति नहीं होगी—व्यर्थ लोग जले जाते हैं उठकर हाथ में नदी और समुद्र का जल ले मंत्र पढ़ने लगा—

दहार में उसे ले गया . न जाने वहाँ क्या करेगा . मैंने जाना कि वहीं काली दह में शेषनाग न कचा चबा जाय—फिर मच्छ कच्छ कुछ भी न कर सकैंगे—गरुड महाराज को हुक्म दिया कि तुम जाय उसका पता लगावो—देखना कालीनाग न खा जाय—वह तो केवल गरुड़ से डरते हैं-गरुड उन्हें भी सर्व स्वाहा कर डालते—उनके सन्मख वे भी चैं पौं

"ॐ ठं ठं ठं वाराह के दाँत की तेलिन—गदिह की बेटी, नारद की भतीजी—तीजी—भीजी—भांजी—कड़ी—कठोर—विनालोम—सकीर्ण—रोती धोती—कनफटा देव का प्रताप—भैरव की (का सराप—गंगा की लहर—लक्ष्मी का पहर—भागीरथी की नहर—दुस—दुस—सुस—फुः फाः फीः धावा की चेली—वाई की अधेली—फलाने की बहू आराम आराम—ॐ फट् स्वाहा . फुरोमंत्र ईश्वरी वाचा—दुहाई देवी बड़े दाँत वाली की दुसजा—दुसजा—नहीं तो गाड़ देंगे."—

पानी फेंक दिया—आग बुझ गई—कौवे उड़ने लगे—तुम्हारी भी पारी आती है—नशा खूब चढ़ा खूब जोर किया .

वह देखो अटारी पर मोर ने बांग दी . मुरगा पी पी करने लगा—मैना कांव कांव करने लगी . विष्णु की स्त्री घसगिदड़ी हो गई - मालती चाँदनी सी छिटक गई जो चाहे सो आवागमन करे . फीस दो टके रात . कच्चे गऊ का मांस लटकने लगा—हड्डी के वंदनवारे बंध गए—श्यामापुर यवनपुर हो गया—पर अंग्रेजी राज में यह अनर्थ कैसा—ईशान कोन पर सूर्योदय हुआ दक्षिण से चद्रमा का रथ चला—लगे तारे टूटने हाथी बोल उठे—कछुए की पीठ गरम हो गई—शुक्र और मंगल भी टूटे—गाज गिरी—अरशदा बीता—आकाश फट पड़ा—सब कलई खुल गई—बादल छा गए—ऐसे काले जैसे अफीम—बीच में चंद्रमा निकल आए—क्या विचित्र लीला थी ! नदी में एक भारी मछली तैरती थी—तैरते तैरते तट पर आई. ज्योंही बूँद लेने को मुह खोला एक बाला जो घाट पर नहा रही थी फिसल पड़ी और उसका पाँव उसके मुख में समा गया . मछली उसे लील गई , मुह बंद हो गया—फिर नदी में बुड़की लगा गई . संध्या हुई घर के लोग बाग टोला परोस में पूछ पाछ करने लगे . पता कहीं नहीं लगा, लगै कैसे उसे तो एक मच्छ महाराज भच्छ गए थे-कच्छ राज अपने परों पैरों) की छाया करते थे-जिसमें कोई वंशी डालके कहीं मच्छ समेत न बझा ले. मैंने देखा कि मच्छ यही

दहार में उसे ले गया, न जाने वहाँ क्या करेगा. मैंने जाना कि कहीं काली दह में शेषनाग न कढ़ा चढ़ा जाय—फिर मच्छ कच्छ कुछ भी न कर सकेंगे—गरुड़ महाराज को हुक्म दिया कि तुम जाव उसका पता लगावो—देखना कालीनाग न खा जाय—वह तो केवल गरुड़ से डरते थे-गरुड़ उन्हें भी सर्व स्वाहा कर डालते—उनके सन्मुख वे भी चें पों नहीं कर सकते. पूछ दबा के छू हो जाते हैं. गरुड़ जी उड़े. मच्छ का पीछा किया पर कच्छ तो अब थल में रेंगता था—और बाला भी बिचारी अधमरी सी उसी के पीछे घिसलती जाती थी. दुष्ट ने तनिक भी दया न देखी. दइमारा पाव पियादे ले गया. इधर उधर सहाय के लिए देखती जाती थी—जैसे कसाई के हाथ की गिरवाँ से गसी गैय्या कातर नैनों से पीछे देखती जाती हो. बहुत दूर तक ऐसे ही ले गए किसी ने जाना भी नहीं—चूँ भी किसी ने न किया—चलते चलते आँखें मिलि मिलाने लगीं—मच्छ तो अपने काम में तत्पर था. झट एक की डोली में घुस गया—नील सागर के पार जाकर एक नवीन नगर देखा—वहाँ पहुँच कर तीर में डोली धरी गई. मच्छ कूद पड़ा और बाला को उगल दिया. फिर तो गुफा में सब लोग समा गए. मच्छ लोप हो गया—लीला समाप्त हो गई—दूर से गाना सुन पड़ा—कोई न कोई तो गा ही रहा होगा.

"काले परे कोस चलि चलि थक गए पांय
सुख के कसाले परे ताले परे नसके।
रोय रोय नैनन में हाले परे जाले परे
मदन के पाले परे प्रान पर बस के।
हरीचंद अंगहू हवाले परे रोगन के
सोगन के भाले परे तन बल खसके।
पगन में छाले परे नाँधिवे को नाले परे
तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के।"—

मेरा ध्यान उचट गया . मैंने आकाश की ओर देखा, चारों ओर देखा पर कोई भी न दिखा . सिर में पीड़ा हो आई , बदन सनसनाने लगा , आँखें सिकुड़ गई . बुद्धि आनंद सागर में मग्न हो गई. जिस वस्तु का ध्यान करता अनंत कल्पना की तरंगें उठतीं . श्यामा की मूरति दीप की टेम में दिखाने लगी . नसें सिकुड़ने लगीं . शरीर स्थिर और साहसी हो गया . देवी के दिए चपक ने क्या क्या तमाशे दिखाए . श्यामा का नाम जपने लगा . मैंने उसे बैठे देखा—नहाते देखा—गृह कृत्य करते देखा—सोये देखा—पर श्यामसुंदर का दर्शन न हुआ . मन तो वहीं था—जहाँ जीव तहाँ तन; जहाँ तन तहाँ प्राण. दृष्टि विभ्रम होने लगा . लेखनी लहराती थी . स्थिर है तो स्थिर, चली तो चली फिर क्या पूछना है; घुड़दौड़ होने लगी . तीर्थ का ऐसा पुन्य प्रताप होता है . भृकुटी चढ़ी है. प्रेम की (के) आसव में छके हैं . होश नहीं—जिधर पैर धरा उधर ही चल निकले . सुरंक तो ठहरी इसमें कुछ पूछना तो नहीं है . आग में जलने लगा . आँखों ने पानी बरसाना आरंभ किया, पर वह आग न बुझी . यदि सहाय की तो केवल मकरंद और वज्राग ने—देवी ने आसव दे अद्भुत रंग छा दिया . क्या जाने क्या बक चले क्या बक गए—वाक्यों का अभी तक अंत न हुआ . पर संत भी तो पूरे वसंत ही थे . डब्बे के आदमी* की भाँति कुटी में रहा करते थे जहाँ एक बंदर ने छेड़ा तो इनकी नानी ही मर जाती थी . यह देखो आकाश में पैर लगने लगे—एक नया ग्राम ही बस गया—भगवान् विराट ने समस्त पृथ्वी दिखाई—मैं तो अर्जुन था न . मुखारविंद—नहीं नहीं—मुख गह्वर खोलते ही विचित्र झाँकी रस में छाकी दिखाई देने लगी—गलियों में गैया चलती थीं .

---

* यह एक खिलौना है । डब्बे में एक बूढ़ा सुपेद दाढ़ीवाला बंद रहता है, ज्योंही ढक्कन खोलो कमानी की शक्ति से वह फक से निकल पड़ता है ।

मुझे भी नहीं मालूम कि मैं क्या क्या कह गया पर मेरे सब वाक्य चंडी ने ध्यान धर के सुने और हँस के बोली—"ठीक है बेटा—ठीक है तेरा कहा सब आगे आता है और धीरे धीरे आगे आवैगा . मैं तेरी भक्ति पर प्रसन्न हुई—वर माँग"—

मैंने फिर वही कहा "यदि तू प्रसन्न है तो मेरी वंदना को विनय पूरी कर—श्यामसुंदर का पता बता दे और श्यामसुंदर को श्यामा से मिला दे" चंडी हँसी और बोली "आँख बंद कर मैं तुझे क्षण भर के लिए श्यामसुंदर को दिखा दूँगी, पर चिंता न कर, श्यामसुंदर कुशलपूर्वक द्वीपांतर में है . श्यामा के पीछे उसने कोटि क्लेश सहे और आश्चर्य नहीं कि कुछ और सहै पर यह तू विश्वास कर कि—

"सुख अंत दुख दुख अंत सुख दिन एक से कबहुँ न रहैं
गति जगत जनके भाग की रथ चक्र सो एहि हित कहैं"

एक दिन श्यामसुंदर के दिन फिरेंगे, वह श्यामा को अवश्य पावैगा. क्योंकि तुलसीदास से सिद्ध पुरुषों के वाक्य क्या निष्फल हो जायँगे ?

"जापर जाकर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलै न कछु संदेहू ॥"

मैंने कहा—"ठीक है पर

श्यामा के कपट छल छिद्रम छछंद मद
निर्दय निरास कुल कानि की निदानिया ।
सुंदर सनेह सब विधि सों सकोच भरो
साँची सी पिरीति श्यामसुंदर लुभानिया ॥
एक की हँसी फाँसी मौत एक दूसरे ही की
कहत कहत जीभ थकित थकानिया ।
अंत एक सबको बिचारि जगमोहन जू
श्यामा श्यामसुंदर की चलैगी कहानिया ॥"

चंडी बोली "देखो श्यामसुंदर के कष्ट दूर हुए . एक दिन न एक दिन श्यामा भी मिलेगी इसको गाँठ से बाँधे रहना . पर अब आँख बंद कर श्यामसुंदर को देखना चाहता है तो देख ले ."

मैंने अपने नैन ज्योंही बंद किए वही शिखर वही सभा सब नृत्य हर्ष में लगी है. फिर भी एक बार भगवान् के दर्शन हुए . अहो-भाग्य ! क्या अपूर्व झाँकी थी . रामचंद्र के सामने श्यामसुंदर दीन मलीन बना खाकी कुरती पहने सिर खोले बकुल माला की सेल्ही डाले बाघंबर ओढ़े हाथ जोड़े विरही बना भगवान की स्तुति जन्माष्टमी के उत्सव में कर रहा था . वह दीन की स्तुति यह थी ,

छप्पै

तुम जनमें जौं आजु मोहि कह दियो गुसाईं ।
छिति छायो आनंद जगत बजि रही बधाई ॥
जौन दुक्ख मम दरयौ कौन पुरुषारथ तेरो ।
पुरुषोत्तम कहवाय और मम लख्यो न हेरो ॥
दुखित धरनि लखि श्यामघन जड़ पावस बरसत अबहि ।
पै न द्रवे तुम नाथ जौ दयानाथ सौ नाम लहि ॥१॥
कौन सुजस तुअ नाथ गाइहौं सो किन भाखो ।
मेरी ओर न करी दया की कोर जु साखो ॥
तुमने अपुने नाँव सरिस गुन कौन दिखाए ।
कौन भरोसे आरत दुख दारत कहवाए ॥
सो न आजु कहि देहु घनश्याम दुःख दूरी करन ।
करि करिपा अब हेरिए दीनभक्त जोरे करन ॥२॥
तुम सर्वज्ञ कहाय जौ न मम पीरहिं जोई ।
तौ झूठे सब नाम तिहारे जगतल होई ॥
एक प्रेम अवलंब तुमहि मुगति जु प्रेमकर ।
गावत श्रुति व्यासादि भक्त मन रोपि रोपि धर ॥

जौ ऐसे कहवाय कै प्रेम मोर चीन्ह्यो नहीं।
तौ रावरि सब कपट की बात गई खुलि तुरत ही ॥३॥
मोर विरह बस देह गई पचि सो किन जानहुँ।
अंतरजामी होय गोय यह हू तुम मानहु॥
एक बरस लौ ध्याय ध्यान कर श्यामा केरा।
देव मनावत गए दिवस आसा बस फेरा॥
ता कहँ अंतरध्यान कर कहँ सोए तुम चक्रधर।
कै सगम भायौ नहीं तुमहि नाथ मम दीनकर ॥४॥
तुम्हरे पग तो भई बिमाई सो भल जानहु।
नाथ गोपिका विरह दवागिन जरि जरि मानहु॥
मान समय वृषभानु सुता के चरन पलोटेउ*।
बस वियोग सहि विरह आँच परि सीस खरोटे॥
अगनित कियो उपाव तुम विरहताप टारन पिये।
सो सब जानि न आवई अहो दया क्यौं नहिं हिये ॥५॥
पचहुँ विरह की अगिन माफि संताप अपारू।
असन न बसन सुहाय भाय नहि मुहि परिवारू॥
जहाँ लखयौ तेहिं सुथल सोय सूने सब सारे।
इक टक लखि सो तजैं ठाँव नहि हग दइ मारे॥
फूलति है वह आजहू जिय मैं हिय मैं हगन में।
अबर में अवनी अबहिं तरु पातिन जल थलन में ।.६।
अब नहि गाई जाय कहानी तेरे सनमुख।
करुनानिधि कर जोर कहौं करिये टुक कछु रुख॥
जौ तुम साँचे दुखहरन प्रेमिन अवलम्बन।
वृन्दा बिपिन सुचंद चारु चरचित तन चंदन॥

---

* 'देहि पदपल्लव मुदारम्' इति गीतगोविन्दे।

तौ न बेर लावहु अहो दीननाथ असरन सरन।
करहु सुरत अरु तुरत प्रभु लै जगमोहन दुखदरन ॥७॥
जो तुअ जन्म उछाह सकल जग मीनन मारी।
मगल गान प्रमान दान करते नरनारी॥
जो आनँद घन तीन लोक आनँद भरपूरा।
तो मैं दीन अकेल एक आनँद अधूरा॥
यह है तुअ महिमा लगी–पै इनाम इक दीजिए।
श्यामसुँदर श्यामा जुगल जोरी जुर जस लीजिए॥ ७ ॥

दोहा

कृष्ण जनम आठैं करी विनती सुंदर श्याम—
हरहु पीर तन हीर की मन की जानत राम ॥८॥

इसी स्तुति को सुन चाहा कि श्यामसुंदर को पकड़ लेंय और दो बातें तो कर लेंय पर ज्योंही हाथ बढ़ाया आँख खुल गई, सब विला गया, सवेरा हो गया—देखता हूँ तो कोई कहीं नहीं—बस वही घर और वही खाट—वही दीवट.

"वितान तने जहँ फूलन के द्युति चाँदनी शारद जोति अमद।
मिली सपने में तिया कविदेव मिटे सबही जियके दुख दद॥
मुगध सुमजु सनेह सनी सुतौली कोई कूकि उठ्यो मति मंद।
खुलै अँखियाँ तो न चंदमुखी न चंदोवा न चाँदनी चद न चंद॥"

चकित हो आँखें मींजता ही रह गया. वाहरे विचित्र स्वप्न! क्या क्या देखा क्या क्या तमाशे दिखे—बस देखते ही बन आता है. श्यामा और श्यामसुंदर की प्रीति कैसी विचित्र हुई. इसका अत कैसा हुआ. कहाँ से स्वप्न में श्यामा अपना सब हाल कहती थी—अब वह कहाँ बिलाय गई क्या क्या कहा—वाहरे समय! वाहरे काल! तू क्या क्या नहीं दिखाता? कहाँ वह घोर यमपुर के तुल्य मुर्दहरे का कारागार—

कहाँ वह डाइन, राजदूत, जेलर ! कहाँ का वैर और कहाँ का वह न्याया-धीश—सब के सब कहाँ लोप हो गए ? पर श्रोता सावधान हो . इसे केवल स्वप्न ही मत समझो, इसको सुन इसके सार को ग्रहण करो . इस सागर को मथन कर इसका सार अमृत ले लो . स्त्री-चरित्रों से बचो . बस इसी शंकराचार्य के कहे को स्मरण रक्खो—

"द्वारं किमेकं नरकस्य नारी।"

और महाराज भर्तृहरि के कहे को—

आवर्त्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां,
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ।
स्वर्गद्वारस्य विघ्नो नरकपुरमुखं सर्वमायाकरण्डं,
स्त्रीरत्नं केन सृष्टं विषममृतमयं प्राणिनां मोहपाशः ॥

इति चौथे प्रहर का स्वप्न

पूस बदी गुरुवार तीज दिन शिशिर रायपुर माहीं।
छनैन वेद ग्रह चंद्र वर्ष यह संवत्सर हरषाहीं ॥
गद्यपद्यमय विरचि कथा शुभ श्यामापद परसादा।
"श्यामास्वप्न" नाम की पोथी प्रकटाई बहु स्वादा ॥
पढ़ि यह सादर श्रोर छोर तै बुधजन कहहिं सराही।
गुन अरु दोष बताइय छल तजि खलहू छमहु दिठाही ॥
या जग नारि नैन के शर सों को बचि रह्यौ बताश्रो।
श्रौंसिन देखि पियत घउ विष यह सो मदिरा बौराओ ॥
जान दोष सब संत असंतहुँ चूकत या मग आए।
ऐसो और मरम नहिं लखियत पढ़े गुनेहू ध्याए ॥

---

* १६४२

जब लौं बालक पुत्तील को कतरत अँगुरिन काटै।
तब लौं चाहै कितिक सिखावो तजत न टेवँ न डाटै॥
पै गिरि कूप बार इक सोई बारबार गिराही।
तासों बढ़िकै और न मूरख जगत माहिं दिखाही॥
पढ़ि यह स्वप्न बिचारि लीजिए कितने दुख की खानी।
नारी अहै जगत पुरुषन को कहिये कथा बखानी॥
शम्भु स्वयम्भू हरि हू जाके बल प्रभाव रुख हेरे।
ते इन मृगनैनिन के घर के सदा दास अरु चेरे॥
बचन अगोचर चरित विचित्रहु जाके नहिं कहि जाई।
ऐसे सुमन शरासन धारे मदनहिं प्रनवौं भाई॥
जाको आदि अन्त नहिं जानौं पामर थकि थकि हारो।
शिव से जोगी भए जासु बश धन्य सु ताहि बिचारो॥
पै यामें कछु शक नहि रञ्चक नारि नरक सोपाना।
जियत देय दुख दारुन देहिन मरे न कछू ठिकाना॥
यासों बार बार कर जोरे कहहुँ देखि सब रगा।
विषपूतरि सम वाहि तरकिए तजि वाको परसगा॥
एक मास के माहिं जबहि मुहिं औसर मिल्यौ सुहानो।
तबै बिरचि रचि रचि लिख लीन्हो "श्यामास्वप्न" प्रमानो॥
श्यामालता—स्वप्न श्यामा को तामधि "विनय" बगेरी।
देवयानि—सपत्तिलता अरु मेघदूत—रस बोरी॥
रचो और पोथी जिनको मैं नाम अनुक्रम गायो।
देवयानि के अंतिम ठौरहिं कवितसुधा बरसायो॥
सोई विजयमुराघवगढ़ के राजपुत्र बनवासी।
श्री जगमोहनसिंह चरित यह गूढ़ कवित परकासी॥
गूढ़ मित्र हृदयगम केवल गूढ़ अर्थ पहिचानै।
बाँचि अनत स्वादु लहि मेरो सफल परिश्रम जानै॥

श्यामानंद ब्रह्मचारी जू आचारज अरु ध्याता।
श्यामालता-सुमन के सुंदर प्रियमकरंद विलासा॥
ऋषि वक्रांत बीज मधुकर सो छंद मंद नहिं सोहै।
श्यामाशक्ति श्यामसुंदर जू कीलक सबथल मोहै॥
बहुत ठौर उनमत्त काव्य रचि जाको अर्थ कठोरा।
समुझि जात नहिं पैहूँ भावित संज्ञा शब्द अघोरा॥
सपनो याहि जानि मुँहिं छमियो विनवत हौं कर जोरी।
पिंगल छंद अगाध कहाँ मम उथली सी मति मोरी॥

॥ इति श्यामास्वप्नः समाप्तः ॥

विनय

सोरठा

बंदौ श्यामा श्याम चारहु फल को मूल जो
करहु मोर उर धाम हरहु पीर अनपाइनी ॥१॥
विनय करौं कर जोर सुनु जगमोहिनि लाडली
करहु दया की कोर तुअ प्रभाव भव भय तरत ॥२॥

सवैया

हम नेह कियो तजि गेह सबै सुत, मातु पिता अरु भ्रात जहाँ
बिनु मोल के दास भए तबहीं जब कीन्हों कृतारथ मोहिं अहा ।
अब तो उतनो नहिं चाह करो जगमोहन दुःख अनेक सहा
"सब छोडि तुम्हैं हम पायो अहो तुम छोडि हमैं कहो पायो कहा"॥३
इतनो न विचार कियो पहिले जब प्रीति लगाय लई तुम हा
बजिकै सब गाँव में डोंडी फिरी भई हाय कनोडी कछू न रहा ।
जगमोहन भूलि गई अब तो तजि कै सब भाँति न जीय दहा
"सब छोडि तुम्हैं हम पायो अहो तुम छोडि हमैं कहो पायो कहा"॥४

कुंडलिया.

श्यामा बिन इत बिरह की लागी अगिन अपार
पावस घन बरसैं तऊ बुझै न तन की झार ।
बुझै न तन की झार मार निज बानन मारत
आँसू झरना डरन मरन को जो मुहिं जारत ।
जरत अत अनग मीत बनि नीरद रामा
कैसे काटों रैन बिना जगमोहन श्यामा—॥ ५ ॥

सवैया

बसिकै इक गाँव में नाव चढ़े हम प्रेम पयोनिधि माहि महा
बहु भाँति निरास चटानन बीच तुफानन सो बचि कै न रहा।
जगमोहन बावरी कैहूँ सुनो बिनती इतनी हठ मान गहा
"सब छोड़ि तुम्हे हम पायो अहो तुम छोडि हमैं कहो पायो कहा"॥६॥
परि पैयाँ गुसैयाँ सरीस करी बिनती बहु जोर कै हाथ गहा
तुमहूँ पहले बहु बात दई "नहिं छोड़हिगी हम कैहू" कहा।
जगमोहन हू तिमि ध्याय तुम्हैं परतीति करी पतिया जिनहा
"सब छोड़ि तुम्हैं हम पायो अहो तुम छोडि हमैं कहो पायो कहा"॥७॥
कुलकानि तजी गुरु लोगन में असिकै सब बैन कुबैन सहा
परलोक नसाय सबै विधि सों उनमत्त को मारग जान गहा।
जगमोहन चोर हया निज हाथन या तन पाल्यो है प्रेम महा
"सब छोड़ि तुम्हैं हम पायो अहो तुम छोड़ि हमैं कहो पायो कहा"॥८॥
लखि लीन्हीं तिहारी पिरीति सुनो मनकी मनमें जु रहे धर कैं
छिनको न निवाह कर्यो तनिको कुलवंश औ जात कहा कर कैं।
मिलि भेटिबे की कछू बात नहीं जगमोहन के मन को दरकैं
निसि वे बतियाँ जब याद परैं तब कूल करेजन में करकैं॥९॥
श्यामल श्याम लखात चहू नभमंडल में बग पाँति सुहाई
दूब हरी हरी गैलै गईं मूंदि हा हा हरी सुधि हू बिसराई।
त्यों जगमोहन पीरी परी बिरहानल ने सब देह जराई
तेरे बिना घन घेरि घटा तरवार लै बिज्जु अग्र चढ़ि धाई॥१०॥

(मयूर को देख)

दोहा

नीलकंठ कलरव करहु जाय पियारी गेह।
तनिक सँदेस सुनाइए होय लहलही देह॥११॥

सवैया

सुधि कीजिए श्यामा वही दिन की
जब अंक में अंक लगाय रही
अति दूबरे गात मृणाली मनौ
मथि डारे थके रतिरंग लही।
अधरासव सों छकि तुच्छ गिन्यो
जग के सिगरे सुख दुःख यही
जगमोहन पै नहिं जानो रह्यो
बिसवास को बाको परैगो सही ॥१२॥

दोहा

बिसरैं पै तेरी अली बतियाँ अजौं न हाय।
सुधि करियो उन दिनन की जब तुम रहीं सहाय ॥१३॥

सोरठा

सीखी तनिक दया न दीन दयाल कहाय कैं।
श्यामा दर्शन दान निज जाचक कहँ दीजिए ॥१४॥

दोहा

करियो सुधि या साँझ की सुहि बंशीवट धाम।
तुहिं प्रतिदिन निरखत रहे शशि चकोर लौं श्याम ॥१५॥
कैसे सुधि करवाइए या दिन की तुहिं हाय।
जब न लख्यौ सरितापुलिन रहे रोय पर आय ॥१६॥

कुं०

तब दरसन ऐसे हते दिन में सौ सौ बार
अब दरसन ऐसे भए आएँ परत पहार।
आएँ परत पहार हार जिय धरिकैं बैठे
कीन्हे पूरब पाप कौन जे मो मन पैठे।

काको कीन्ह बिगार जौन दुख झेलें बरसन
दुर्लभ हाय विचारि अहो श्यामा तव दरसन ॥१७॥

दोहा

कीजै कौन उपाव अब दई भयो मुहिं वाम।
तनिक दया चीन्हीं नहीं हाय बिसार्‍यो राम ॥१८॥
चलत न दीन्हौ दरस टुक रहे बिसूरत प्रान।
निकसे सठ निर्लज्ज नहिं हठ करि रहे निदान ॥१९॥
जरी धरी परबस परी परी कसाई हाथ।
इची खिची गिरगा गसी गैया लो (लौं) बुग्र साथ ॥२०॥
जेहि नित नैना निरखते रखते और न काम।
रूप परखते और नहिं तिन कहँ भी प्रभु वाम ॥२१॥
सोवत जागत उठत अरु बैठत बोलत बैन।
जेहि देखत वे दिन गए सो केहिं देखैं नैन ॥२२॥
कबहुं अटारी देहरी कबहूँ कियारी बीच।
कबहुँ निवारी बीनती ठठकि किवारी खींच ॥२३॥
कबहुँ नीर मज्जत कबहुँ नदी तीर की भीर।
तीहू धीर सरीर नहिं चलत नैन जिमि तीर ॥२४॥
नदी तीर एड़ी घिसति झुकि झुकि झफकि हटै न।
पियहिं हसति निरखति रहति चलत चपल चहुँ नैन॥२५॥
कभू न्हात बतरात कहुँ कहुँ निरुवारत केश।
कभू घिसत एड़ीन झुकि निरखत पियको वेश ॥२६॥
तजनि न सो ठाँवहिं मुरकि निरखति पिय मुखचंद।
वसन दाबि दंतन दुबिच पैरत सलिल अमंद ॥२७॥
कै आगू पाछू कबहुँ आवत पिय के संग।
जौं अचांक मग भेटती बिहसति करि बहु रंग ॥२८॥
मुख लिलार सेंदुर सहित माँग सवाँरी बाल।

जलदपटल ते विलग मनु मंगल शशि इक काल ॥२६॥
गोरी तेरे मुख लसै दाग सीतला केर।
मनहुँ चद्रमा ने रच्यौ चंदन बुँद की ढेर ॥३०॥
जो रस तुश्र श्रधरान में सो रसना न बखान।
रस ना रसना श्रौर में ताते रसना जान ॥३१॥
कहा कहों गोरी सुनो नदिया नाव संयोग।
विंध्यकीर सिंदूरगिरि तीर सारिका भोग ॥२२॥
हम 'पंछी श्रति दूर के दूर हमारो देश।
तुम सिंदूर सी सारिका सुंदर सोभित वेश ॥३३॥
गयो कीर उड़ि श्रान नग गई सारिका श्रंत।
रतन भूमि गिरि के निकट सह्यौ कलेस श्रनत ॥३४॥
कीर धीर कैसे करै जाके पीर शरीर।
पर उखारि पिंजरन जकरि लैगो व्याघ सुधीर ॥३५॥
सावन के भावन जलद भूखो बाज झपेट।
गहि चोंचन हिसक श्ररी मैना लई लपेट ॥३६॥
इत बिछुरे कीरहु सुजन उत मैना बिछुरीह।
मैना बस श्रपने रह्यौं नैना लख्यौ न जीह ॥३७॥

सवैया

यह तीर मनोहर नीर सुहावनो
चीर बिना तुश्र नीको नहै।
चहुँ धीर समीर जनावत पीर
भुजंगम मैर सरीर दहै।
श्रव गुजत नाहि मिलिंद के पुंज
निकुंज में मंजुलता न रहै।
जगमोहन हाय परे तन पिंजर
प्रान विहंग उड़ायो चहै ॥३८॥

कब याद अहो टुक वा दिन की जब छैल उतै तुव बाँह गही।
भुज मेलि परस्पर कंठ कपोल कपोल अमोल लुभाय लही॥
निरखौ न कियो कछु हास विलास सुमंद हँसी चतराय रही।
जगमोहन हीय फटै दरकै सुधि आवै जबै सँग तेरे सही॥३६॥

दोहा

बीती निशि इक छनिक मैं तनिक न जान्यौ कोय।
कैसे सुख सों बहु प्रिये गए दिवस दुख खोय॥४०॥
डारि गरे मृदुबल्लरी बाँहन किय रसघात।
चूम्यौ अधर मिलाय कै अधर मंद मुसकात॥४१॥
सो सुधि जब आवत अहो दरक जात मो होय।
जौं सुधि तुहिं आवै कहूं बचै न तौ तुअ जीय॥४२॥
जौं कविता सरिता सरिस शक्ति धरै तो मोहि।
तो सों मिलन न कठिन कछु यही रह्यौ मग जोहि॥४३॥
जौं ईसुर हो तो कहूँ सुनतो करुना बैन।
बिरह बिलाप न सहज कछु तो मुहि देतो चैन॥४४॥
सुनिए विधिना विनय बहु बिरह बिलाप बहोर।
प्यारे जो जगदीन संग श्यामा मिलवहु जोर॥४५॥

सवैया

श्यामा बिनै सुन नेह तुहीं मम जीवन दूसरी और न कोऊ।
काहे तज्यो मुहि का अपराधन दीन्हो बिचार बिना दुख सोऊ॥
सो जो कहो केहि नीत की रीति पिरीति की चाल बिचारिये दोऊ।
तेरे सुनाम की माला जपैं जगमोहन होनी भई सुतो होऊ॥४६॥
कौन कहैगो हमैं "पिय प्यारे सुनो मनमोहन ए बतियाँ।
तुम आवो अचानक गेह तहाँ मुहि लाय हौं आनँद सो छतियाँ॥
पल पावड़े डारि रहौंगी डटी डेवढ़ी डर छोड़ि अधीरतियाँ।
पुनि मढ़हुंगी निज अंक में बाहू पसारिके" ऐसी लिखी पतियाँ॥४७॥

जौं गजराज सरीखे महाबली खीचै सबै गहि डोर पहारहिं।
तौहू टूटै न चलै कोउ भाँतिन पौन को वेग कहा गिरि टारहिं ॥६१॥
भ्रमरी दृग श्यामा सरोजमुखी यदियां गहती न अजो हमरी।
हमरी कहु कौन दशा सजनी जग होती निशंकहु सो कम री ॥
कमरी सम भाभर देह भई दुवरी मुकरी विरहातमरी।
तमरी अब कौन विलोचन चंद मिटै जगमोहन को भ्रमरी ॥६२॥
श्रम री इतनो करि हाय थके इक साधन ना शिव सों कमरी।
कमरी भई प्रीत की रीत सबै मनसो न गयो अजहू भ्रम री ॥
भ्रमरी सम भूलि भ्रमै नलनी चहुँ पायो पराग मधू सम री।
समरी दमरी लौ दियो बदलो जगमोहन व्यर्थ कियो श्रम री ॥६३॥

दोहा,

दिपति दिवाली दीप दुख दारत दुःसह प्रान।
बिनु श्यामा इत द्यौस निशि लगि दमार तन जान ॥६४॥
राम मनावत दिन गए याही दिन की बात।
यही सोच मन रहि गयो हाथ मीजि पछितात ॥६५॥
पुनि न करी मेरी सुरति सुनि न खबर मम कान।
रह्यौ कराहि कराहि जिय विकल मीन लौ प्रान ॥६६॥

सवैया

आज लौ रोवत गावत सोवत जोहत बीते कहू दिन मेरे।
पै अब कैसी करों सुनियै जिय ढाढस ना अकुलात घनेरे ॥
पाती लिखी किहि कारन नाहिं सु छाती जरै विरहा तन घेरे।
हाय दई अनहोनी करी ' जगमोहन सों सब हाथ है तेरे ॥६७॥
आज प्रभात ही बात तिहारियै आय गई जिय सोचत तोही।
त्यौं जगमोहन ध्यानहिं धार रहैं मरतौ समहू जड़ जोही ॥
मूंदत नैन गए तन चैन सो लाय रह्यौ मन मूरति ओही।
और कों का अलियाँ ए लखैं चखि अमृत छांछ पीं क्यों इन्हैं सोही ॥६८॥

निशिचंद को देखि लजैं महातारु क्यौं तारन देखि लखैं जुगनू।
इन श्राँखिन रूप बस्यौ यह पानिप जानत एई बड़ी लगनू ॥
पुनि सूँघि गुलाब चमेली जुही हिय मेलि कनैरहिं सो ठगनू।
अब पूजिए रामहिं छाड़ि कै आन कहा जगमोहन ह्वै मगनू ॥६६॥
बसि कै इन बैरिन बीच भयो बिसवास को घात अघात भली।
हम भूलि कै मेरु को पूज्यो महा दुख पायो मनो तन कूप थली ॥
जपमाला हलाहल से निकरे तिल को तिल लौं न प्रबोध छली।
पुनि नीच की कौन कथा कहिए पय जान पियो विष भाँति भली॥७०॥
सुमायके में नवजोबनी बाला सनेह सकै किहि भाँति दुराय।
कहूँ बगरावति चीर अधीर समीर उड्यौ गहि कै लपटाय ॥
कभू गृहकाज के व्याज चढ़ी उत ऊँचे अटा निरखै पिय आय।
विलास सहास प्रमोद भरी जगमोहन प्रीति छकी दरसाय ॥७१॥
प्यारे पुरान सुनो चित लायकै पाछे यहीं करियो सुखसैनहि।
गाँव के सोय गए अधरात सुनात परोस—न बात कहूँ नहिं ॥
खोर को देखत ही डर लागत चोरहु आयो सुन्यो हम रोरहिं।
माय को मेरो न चिंता कछू बसि रात इतै उठि जाईयो भोरहिं ॥७२॥
टुक मानो कही अबही सबही कबहीं के गए पुनि सोय तबै।
झिमकै जल रात अँध्यारी चलै अति सीरी बयार कँपै तनबै ॥
जगमोहन स्वामी परोसी रहे पुनि रोग ग्रसी मम मातु अबै।
घर सूनो अकेली नवेली डरौं बसिकै इत काटिए रैन सबै ॥७३॥
लखिकै जगमोहन डीठि बचाय सखी उर चंपक माल भई।
गर लाय रही टक लाय पियै निसि चंद चकोर लौ चाय नई ॥
गुरु लोगन सामुहे बोली भलें वह घाट अकेली न जैहौं दई।
तुम पाछे चलौगी भलैं सुई बाट में साँझ जहाँबट खोटो हई ॥७४॥
लखि पीय को जात अन्हात तहाँ गई तीय सुचाय भरी निज जीय।
उठाय लई कर कंचुकी भार दुकूल धर्यो कलसा कमनीय ॥

कहूँ फेहि ओट विलोल विलोचन कैसे रहै छनहू रमनीय।
बिना जगमोहन फीके भए घर बाहर और सहाय न होय ॥७५॥
जा दिन ओट परै तनिको मनिको मन धीर धरै न धरैहूँ।
कै लिख चित्र वियोग के पत्र बिताय पवित्र सुचौसहू कैहूँ ॥
कै दग लाय लखै धुव मारग प्रेम को पारग जाय जनैहूँ।
कै जगमोहन की पतियाँ छतियाँ भरिकै रतियाँ सुनि मैहूँ। ७६॥
अब कौन रह्यौ मुहि धीर धरावतो को लिखि है रस की पतियाँ।
"सब कारज धीरज में निवहै निवहै नहि धीर बिना छतियाँ ॥
फलि है कुसमै नहि कोटि करो तरु केतिक नार सिंचौ रतियाँ"।
जगमोहन वे सपने सी भई सु गई सुअ नेह भरीं बतियाँ ॥७७।

दोहा

बार सवारन मिसि कियो कर पकज सों सैन।
नदी घाट की बाट को सुघर सहेट सचैन ॥७८॥
पिय भेजी बीरी रनी दाडिम दसनि अनार।
लिन सनमुख श्यामा लई को मुख बरनन हार ॥७६॥
हम तुम मेला के दिवस ठेना सों डरि एकु।
चढे अटारी पै अहो प्यारी सुधि करु नेकु ॥८०॥
जदपि भीर इतनी तऊ नागर नेह छिपै न।
तोही सो अरुझे खरे कपसक्ष से जुग नैन ॥८१॥
मुख मयक पर नथ लसै मनहु इदु परिवेष।
जगत विजय को सगुन मनु मदन जोतिषी लेष ॥८२॥
मुख मयक मधि अक मनु माता अक लखाय।
कै छाया मृग नैन की उदर तासु बिलसाय ॥८३॥

* 'कम्पस' एक यत्र होता है, जिसकी सूची सदा उत्तर ही की ओर रहती है कपस अगरेजी शब्द है।

लाल चूनरी पहिर कैं करत खूनरी काहि।
इन्द्रधनुष सो छवि मनौ नभ तन प्रकट दिखाहिं ॥८४॥
जौ न दूर दस हाथ हू तउ न इन्हैं सतोप।
दूरबीन दर दग लखैं तुग्र मुखचद अदोप ॥८५॥
बरजी पै ए ना रहे करजी भए अकाज।
रूप हेतु अरजी करी मरजी भई न आज ॥८६॥
हा कुरगनैनी अनो क्यौं वेधी' जिय मोर।
मैं गरीब कैसी करौं कहा बिगारयौं तोर ॥८७॥
बनी जहाँ लौं सुनि प्रिया सेवा करी तुम्हारि।
'सेवा करि मेवा मिलै' झूठी कहनि बिचारि ॥८८॥
भोरी भोरी भौंह की गोरी कियो बिसास।
सो बिच्छू के डक लौं लागी बिना उसास ॥८९॥
प्रथम लगन की जो कथा सो किमि बरनौ जाय।
ना जानू कैसी भई अनहोनी जग आय ॥९०॥
मैं तुहि शुद्धि सुभाव सौं रह्यौं निरखि दिन रैन।
तू उलटो जादू कियो तकि मारयौ शर नैन ॥९१॥
लखत लखत अभिलाप जिय बढ़यौ प्रति दिन चाव।
बिनु देखे मन ना रह्यौ कर अपने अपनाव ॥९२॥
तुहि नैठे इक दिन लख्यौ मुख रूप अभिराम।
करि परिहास सुमीत इक कह्यौ "तिहारी वाम" ॥९३॥
वा दिन ही सो मन मुह्यो रह्यौ न तनिक बिकार।
सहज भाव लखि कै भलें जिय में लियो विचार ॥९४॥
पै तेरे जग को कहै कौन जगत परवीन।
नारि चरित अवगाहिवे भए सकल इत दीन ॥९५॥
तू पुनि आय सँजोग किय सपने दिवस अकाज।
कौन बैर बसते कियो भुज बधन तजि लाज ॥९६॥
राई सो तिल तिलहिं सो जौ जौ सो गोधूम।

कर पकरत हिय सों लगी लिय कपोल पुनि चूम ॥९७॥
इत हू अभिलाषा बढ़ी बोलन चाह्यौ बैन।
कर सरीर परसन चह्यौ दरसन चाह्यौ नैन ॥९८॥
अधरासव अधरन चह्यौ उरहु चह्यौ उर लागि।
चह्यौ श्रौन सुनिबे वचन मधुर मधुर रस पागि ॥९९॥
दिन में छिन दरसन भए तो मान्यौ जिय चाव।
पुनि दिन दिन दो चार अरु पाँच बेरहू भाव ॥१००॥
देखे बिनु फिर ना रहे कल न परयो पल नैन।
रात द्यौस लेखो लग्यौ तलफत मिलो न चैन ॥१०१॥
जदपि मौन हमसे अधिक गह्यौ गरूरि जरूरि।
तौहू मेंहदी रंग लौं अंत गयो मन रूरि ॥१०२॥
उठनि हँसनि बतरानि अरु निरखन चलन सुजान।
जो न आगमन प्रति दिवस तऊ गए सब जान ॥१०३॥
चन्द्र कहा हाथन दुरै चाँदनि कै पट माहिं।
सूरज किमि छत्रहिं छिपै ढोल छिपै घर नाहिं ॥१०४॥
ज्यौं मयंक छिति सों कई कोस लाख लौं दूर।
तौहू अंक लगात इत तू किन जीवन मूर ॥१०५॥
जो सूरज धन चंद्रमा बसहीं दूर अकास।
कमल कलापि कुमादिनी छिति रहि प्रीति प्रकास ॥१०६॥
तेल बूँद जल लौं कढ़ै एक दिवस यह प्रीति।
मूल सुबर्न लौं मिटत छिति याकी अचरज रीति ॥१०७॥
हम दोउन को चोलिबो हँसिबो मज्जन नीर।
सहि न सके इत के सुजन उठी जु तिन उर पीर ॥१०८॥

॥ समाप्त ॥